॥ ॐ ॥

सम्पादक पुष्पाङ्क १२

समकित प्रदीप

कर्ता

सद्गत शास्त्रविशारद उपाध्यायजी
महाराज मंगलविजयजी

प्रकाशक

जैन श्वेताम्बर श्री संघ, अमरावती

अनुवादक

चन्दनमल नागोरी
छोटी सादडी (मेवाड)

प्रथमावृत्ति १०००

प्रकाशक—
चन्दनमल नागोरी
जन पुस्तकालय
छोटी सादडी (मेवाड)

मूल्य सदुपयोग

मुद्रक—
प्रतापसिंह लूणिया
जाब प्रिंटिंग प्रेस, ब्रह्मपुरी
अजमेर–३–६३

परम पूज्या ब्रह्मचारिणी विदूषी

श्री विचक्षणश्रीजी साहिबा

आपके द्वारा अनन्त उपकार हुआ है

समर्पण पत्र

परम पूज्या व्याख्यान वाचस्पतिका विदुषी बाल ब्रह्मचारिणी
विचक्षण श्रीजी महाराज साहिबा
की सेवा में

आपकी दीक्षा पर्याय चौबीस वर्ष की है। आपने बाल्यवय बारह वर्ष की आयु में दीक्षा अंगीकार कर कुल को उज्ज्वल बनाया। व्याख्यान की शैली रोचक और भाषा मधुर के कारण सहस्रों की गणना में श्रोता लाभ लेते हैं और आप संयम यात्रा में अति सावधान व निपुण हैं इसी कारण से शिष्या समुदाय विनयी, विद्वान् और क्रियाशील हैं। शासन की शोभा तुल्य आपका जीवन है, आपका जन्म स्थान अमरावती है। माताजी के साथ दीक्षित होकर आपने गौरव बढ़ाया है। अब चालीस वर्ष के बाद अमरावती पधार कर संघ को अनुग्रहित करिये और संघ की ओर से प्रकाशित समकित प्रदीप का अनुवाद स्वीकृत कर संघ को आभारी करियेगा इति २०१८ पोष सुदी १४।

दर्शनाभिलाषी

अमरावती जैन श्वेताम्बर श्री संघ

निवेदन

समकित प्रदीप उपाध्यायजी महाराज श्री शास्त्र विशारद मंगलविजय जी० कृत का यह हिंदी अनुवाद है। विषय रोचक और आत्मशुद्धि के लिये पठन करने योग्य है। इसका अनुवाद करने के लिए परम स्नेही विद्वद्वर्य श्रीमान पूरणचन्दजी नाहर कलकत्ता निवासी का बहुत आग्रह था। उपाध्यायजी महाराज ने भी कई बार आदेश दिया तदनुसार द्रव्य प्रदीप पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करने के बाद समकित प्रदीप का संक्षिप्त अनुवाद किया और आवश्यकीय कार्य हेतु कलकत्ता से बम्बई जाने के कारण जो बाकी रहा था वह नहीं कर पाया। संयोगवश संवत २०१७ में पर्युषण आराधना के लिये अमरावती से सेठ फूलचंदजी साहब मुथा का आमन्त्रण संघ के नाम से आया। आग्रह के कारण स्वीकार कर समय पर मैं अमरावती पहुंचा। व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या अधिक होती थी। पूजा का ठाट और भक्तिभाव का भान प्रतिमाओं में था। रात्रि को पंडित और द्रव्यानुयोग के ज्ञाता पुरुषों की जमावट आठ बजे हो जाती और रात्रि के १ बजे तक प्रश्नोत्तरी होती थी। वह आनन्द मेरे जीवन में पहला ही था। व्याख्यान में मुग्ध होकर दस भाइयों ने बारह व्रत अंगीकार किये और बहुतसों ने व्रत पच्चक्खान लिये। एक छप्पन दिक्कुमारी के आगमन रूप पूजा पढ़ाई गई उसमें सम्मिलित था। वह दृश्य अत्यंत सुहावना, रोचक एवं

अमरावती संघ के समक्ष

श्री नागोरीजी कल्पसूत्र व्याख्यान दे रहे हैं

है। पर्युषण में तो सब समुदाय आबाल युवा वृद्ध प्रायः करते हैं। प्रभावनाएं भी नियमित होती रहती हैं। कल्पसूत्र का प्रोसेशन व रथयात्रा का ठाठ भी प्रशंसा के लायक रहता है। संघ का कार्य श्रीमान् पूनमचन्दजी साहब द्वारा सेवाभाव में होता है। धर्मस्थान निर्माण कराने के उपलक्ष में सद्गत सेठ फतहचन्दजी मोतीलालजी और श्रीमती राजीबाई के जीवन चरित्र सहित कोई ऐसी पुस्तक छपाई जाय कि जिसमें उनके धर्मकार्यों का वर्णन भी हो। श्रद्धालु आत्मा के इस कारण समकित प्रदीप पुस्तक मुद्रित कराकर उसमें जीवन चरित्र छपवाने का निश्चय किया गया। तदनुसार अनुवाद करके यह पुस्तक अमरावती श्री संघ के द्वारा प्रकाशित कराई गई है। समकित रत्न को समझने के लिये यह पुस्तक अति उत्तम एवं अवश्य पठनीय है। इसका श्रेय तो सब उपाध्याय जी महाराज को है और प्रकाशन का श्रेय अमरावती श्री संघ को है। अमरावती श्री संघ का स्नेह और पर्युषण पर्वाराधन चिरस्मरणीय रहेगा।

पौषकृष्णा द्वादशी
संवत २०१६
मु० जयपुर

निवेदक—
चन्दनमल नागौरी
छोटी सादड़ी (मेवाड़)

६ अतरायकम की पूजा हिन्दी भाषानुवाद कथा आदि के वणन सहित अनेक जानकारी और भेद जानने के लिए यह उत्तम पुस्तक है। कीमत ।।≈) आना।

७ सामायिक रहस्य–इस पुस्तक की शोभा जितनी कर थोडी है इस पुस्तक मे सामायिक का वणन इस ढग से किया गया है कि जिसन सामायिक करना स्वीकार किया हो उसकी आत्मा पर सयम लाने के लिए यह प्रथम पुस्तक है। लेजर पेपर पर छापी है। चार फाम है। एक आने के सोलह पेज छपे हुये मिलेंगे इससे अधिक सस्ती कोई पुस्तक क्या होगी। अवश्य मगाइए प्रभावना योग्य है।

८ ऋषि मडल स्तोत्रपट–आट पेपर पर बडा मूल्य १) रु०

९ ऋषि मडल स्तोत्र पट कपड पर कीमत २) रु०

चन्दनमल नागोरी,
जन पुस्तकालय,
छोटी सादडी (मेवाड)
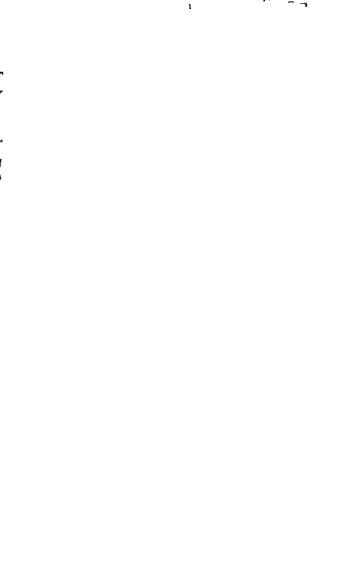
श्री ग्रामाधिनाथ भगवन्त

श्री नागराजा व मुवाजी सभा म खड हैं

विषय सूची

सेठ फतहचन्दजी साहब फलोदिया

आपने जिन मंदिर उपाश्रय धर्मशाला का
निर्माण कराया

श्री

श्रावकरत्न श्रीमान् फतेचन्दजी एवं श्री मागीलालजी
फत्तोदिया, बंधुद्वय का संक्षिप्त जीवन चरित्र

श्री फत्तेचन्दजी फत्तोदिया का जीवन वृत्तांत

जीवन असंख्य घटनाओं की परम्परा का नाम है। सुबह से रात तक मनुष्य निरंतर घटनाचक्र में आबद्ध रहता है। दिन निकलता है, अस्त होता है, रात आती है, दिन जाती है। और इस प्रकार दिन, माह वर्षों का कालक्षेप होता रहता है। समय तो धर्मनिष्ठ व्यक्ति का भी बीतता है और कर्मनिष्ठ का भी। लेकिन लेखनी तो उन्हीं पर उठ कर गौरवान्वित होती है जो धर्म में स्वयं का जीवन पिरो दें और ऐसे पदचिन्ह छोड़ जायें जिनके सहारे चलकर अन्य व्यक्तियों को भी सद्प्रेरणा मिले। आप तरे और लोगों को भी तारे। ऐसे ही बंधुद्वय के जीवन चरित्र को मैं प्रकाश में लाना चाहता हूँ।

राजस्थान में पीपाड़ शहर के पास ग्राम 'रीया (सेठजी की)' से उपरोक्त बंधुओं के पूर्वपुरुष अहमदनगर जिले के साकुर नामक ग्राम में आकर बसे। वहां से श्री पूनमचंदजी आदि के महाराष्ट्र के वरोरा और हिंगणघाट में व्यापार हेतु आये। तत्पश्चात् इन्होंने व्यापार निमित्त अमरावती में स्थाई निवास किया। इन्हीं सेठ पूनमचन्दजी की धर्मपत्नी श्रीमती राजीबाई

का कुक्षी से ३ पुत्ररत्नों ने जन्म लिया। ज्येष्ठ श्री शोभाचन्दजी का जन्म सं. १९३१ में, अनुज श्री फतेहचन्द का जन्म सं. १९३७ में और कनिष्ठ श्री मांगीलालजी का जन्म सं. १९४६ में हुआ। श्री पूनमचन्दजी ने यहां की प्रसिद्ध फर्म 'श्री मानमलजी गुलाबचन्दजी मुणोत' की साझेदारी में कपड़े का कारोबार शुरू किया। ज्येष्ठ पुत्र श्री शोभाचन्दजी साहसी उद्योगी व समाजप्रेमी पुरुष थे। पर काल की कुटिलता से सं. १९६२ में अल्पायु भाग कर ही स्वर्ग सिधार गये। उनकी धर्मपत्नी भी एक कन्या को छोड़ कर जल्दी ही चल बसी। अब साझेदारी का कारोबार श्री फतेहचन्दजी व श्री मांगीलालजी पर ही आन पड़ा। इन्हीं दोनों बन्धुओं का जीवन उत्तरावस्था तक साथ साथ चला। चूंकि श्री फतेहचन्दजी का जीवन ही ज्यादातर बड़ा होने के नाते अगुवा रहा है अतः मैं उन्हीं का वर्णन पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता हूं।

श्रीमान फतेहचन्दजी वृत्ति के बहुत ही साहसिक तथा धर्मज्ञान उद्योगी और परोपकार परायण पुरुष थे। वे हरएक क्षेत्र में आगे आये।

धार्मिकता —इधर के प्रदेश में विहार की कठिनता के कारण उन दिनों मुनि महाराजों का विचरण बहुत ही कम रहता था। सन् १९८६ में शान्तमूर्ति मुनि श्री हंसविजयजी महाराजादि मुनि मंडल का श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथजी की यात्रा निमित्त पधारना हुआ। मुनि श्री यात्रा कर अमरावती पधारे। यहां पर उनके सारगर्भित तात्विक प्रवचनों को श्रवण कर श्री फतेहचन्दजी धार्मिकता के दबे हुए बीज अंकुरित हुए व देव गुरु धर्म पर सारे

श्रीमती रानीबाई साहिबा

जिनभवन धर्म स्थान आदि निर्माण आपकी भावना व प्रेरणा से ही हुआ

कुटुंबकी अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे ही धार्मिक बीज आगे पल्ल वित होकर अग्र ज रूप में विकसित एव फलदायी हुये। और इस प्रकार आप के परिवार ने संसार सागर में धर्म रूपी नौका का सहारा लिया। श्री जिनप्रवर्तित धर्म में लगकर आत्मधर्म का मार्गानुगामी हुवा।

यहां के संघ में ऐक्यता के अभाव के कारण दो धड़े बन चुके थे। एक बीकानेरी एवं दूसरा बड़ी मारवाड़वालों का कहलाता था। बड़ी मारवाड़ वाले धड़े में भी समय की विपरीतता से कुछ वैमनस्य हुवा। इस प्रकार की सारी हालत पर भी फतहचन्दजी का ध्यान आकर्षित हुवा और उनकी अपनी बुद्धिमानी और समय की दूरदर्शिता से यहां के शहर में एक अलग संगठन का प्रादुर्भाव हुवा। वही संगठन आज तक ५० वर्षों से उपरान्त का होकर श्री जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल के नाम से प्रचलित है। मंडल की स्थापना के बाद इसकी श्री शासनदेव की कृपा व सब भाईयों के प्रेम सहकार से, उत्तरोत्तर उन्नति होती रही है।

सुधर्म में लगकर अपने आत्मधर्म को न साधे तो उस व्यक्ति का जीवन उस लाहर के भाने की तरह है जो स्वयं ही सोता लता है और छोड़ता है। सच्चरित्रता की आभा और धर्म की भावना बाहर प्रदर्शित हुए बिना नहीं रहती। सेठजी के धार्मिक भाव दिनोंदिन उत्तरोत्तर वृद्धि को पा रहे थे। फलस्वरूप धार्मिक वांचन, मनन एवम् संत समागम का लाभ लेते रहते थे। 'अन्य स्थाने कृतं पापं, तीर्थस्थाने विमुञ्चति' इस सूक्त्यानुसार समय समय पर शत्रुंजय तीर्थों की यात्रा बड़े उल्लास भाव

से किया करते थे। अमरावती नगर में एक जैन श्वेतांबर मंदिर तो पहले से ही है परन्तु में पदार्पण करने वाले मुनि महाराजों के आवास हेतु एवं चातुर्मासीय तथा बाहर से आने वाले धर्म बंधुओं के लिए व्यापारादि निमित्त ठहरने व स्वधर्मी वात्सल्यादि के लिए एक स्थान की पूर्ण आवश्यकता महसूस होती थी। आप सं १९७५ के चातुर्मास में श्री पूज्य रविविजयजी महाराज की सेवा में अहमदाबाद पधारे। वहाँ भी आपको उपरोक्त स्थान के लिये प्रेरणा मिली और अमरावती पधारने पर प्रेरणा को कार्यान्वित किया। एक बड़ी जगह सराफपुरा अपनी पूज्य मातुश्री के नाम पर धर्मशाला उपाश्रय तथा जिनालय बनाने की शुरुवात की। इस कार्य में, मेरे पूज्य पिताजी श्री धनालालजी मुथा, श्री सौभागमलजी, श्री ताराचंदजी निबजीया श्री भीकमचंदजी मुणोत एवं श्री धनराजजी मुणोत आदि ने पूर्ण सहकार दिया। सं० १९८० में जिन प्रासाद की उत्साहपूर्वक खर्च कर प्रतिष्ठा करवाई व तपस्याओं का धूमधाम से उद्यापन भी किया। इसी राजीखाई आप धर्मशाला व मन्दिर का कुल खर्च कुछ वर्षों तक आप ही की तरफ से होता रहा। बाद में खर्च के लिए एक स्थाई मिलकत सह व्यवस्था पत्र कर के श्री जैन श्वेतांबर मित्र मंडल को सौंप दिया गया। और तब से यह मंडल ही का देख रेख में है।

किं बहुना आपकी धर्मभावना में दिनों दिन वृद्धि होती रही। तत्पश्चात मुनिराज श्री दर्शनविजयजी (त्रिपुटी) का यहां पदार्पण होने पर आपने श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कर

अपने जीवन में धार्मिक कार्य में लगाए और अपने मानव भव को कृतकृत्य किया। नित्य नियम एवं नानाविध तपश्चर्यादि कर सम्यक्त्व का परिचय दिया। एक आदर्श श्रावक के सदृश संसार में स्वयं तरने का व अन्य व्यक्तियों का भी तारने का प्रयत्न करते रहे। प्रत्येक धर्म कार्य में सक्रिय उत्साहपूर्वक भाग लेते थे और अन्य भाइयों को भी प्रेरणा दिया करते थे। विशेषतया समाज की सभी सम्प्रदायों में एकता के भी हिमायती थे। मिसाल के तौर पर एक बार स्थानकवासी सम्प्रदाय ने एक बाई की दीक्षा का अवसर आने पर उसके कार्य व्यवस्थादि में भाग लेकर आपने सामाजिक एकता और विशाल हृदय का और कार्य कुशलता का परिचय दिया था।

यहाँ की धर्मशाला, जिसका एक श्रावक भाई को प्यार से निर्माण हुआ था वर्तमान में एक पुजारी के कब्जे में चली गई थी। उसकी तरफ से आपका ध्यान जा रहा था। उसके लिए श्री धनराजजी मुणोत आदि बन्धुओं को उचित प्रेरणा कर अपने भाग दान से पुनः सुचारु व्यवस्था करवाई। इस प्रकार के अनेक धार्मिक कार्यों में भाग लेने का श्रेय आप श्री को प्राप्त है।

आपने आजीवन श्री जैन श्वेताम्बर मित्र मंडल के सभापति के पद पर रहकर उसके गौरव को बढ़ाया और चिरकाल तक अपनी सेवाएं अर्पण की। इसी प्रकार इस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध तीर्थ श्री भद्रावती पार्श्वनाथ के व्यवस्था मंडल में आप श्री आजीवन सदस्य रहे।

राजनीति–आपने राजनीति म भी विशेष भाग लिया। आपका लोकमान्य तिलक के होमरूल आंदोलन के समय म व उसके बाद भी देश सेवा म अच्छा सहयोग रहा। स्थानीय नगर पालिका के भी आप कई वर्षों तक सदस्य रहे व अंतरिक समितियों के प्रधान पद पर भी आसीन रहे। कई वर्षों तक आपने गोरक्षण समिति के मंत्री पद को सुशोभित कर समिति को उन्नति पथ पर लाकर आगे बढ़ाने म योग दिया।

व्यवसायिक क्षेत्र–व्यापारिक क्षेत्र म भी पीछे न रहे। आपने निजी व्यापार से लाखो रुपयों का द्रव्य उपार्जन किया। हर एक क्षेत्र म आपका मुख्य उद्देश्य संगठन तो रहता ही था। कपड़ा बजार म भी व्यापारियों के संगठन–ऐक्यता की निहायत आवश्यकता था। तदनुसार एक वस्त्र व्यवसायियों के असोसिएशन की स्थापना की। उसके भी आप कई वर्ष तक अध्यक्ष रहे।

समाज सेवा–यह तो आपका रुचिपूर्ण काय था ही। अखिल मध्यप्रान्त जन श्वेतांबर परिषद हुई थी उसमें भी आप अधिकार पद पर रह चुके थे। जब कार्यालय यहां रहा था, और जब जब भी सेवा का अवसर प्राप्त होता था आप सेवा देने म चूकते न थे। स्थानीय ओसवाल समाज म भी सभी भाइयों म प्रेमभाव बना रहे और समाज हर क्षेत्र म उन्नति करे यह भावना आपके दिल म प्रबल रूप से दिखाई देती थी। समाज म दुखीजन को देखकर सेठजी का अनुभूति पूर्ण हृदय द्रवित हो उठता था। व उसका यथाशक्ति दुख निवारण का प्रयत्न किया करते थे। समाज के प्यारे लालो (बच्चों) को देखकर

मानन्ति होते थ उन धम समाजा^ क भावी कणधार समझत और प्यार करते व यथायोग्य उपन्न ैत रहत थ। निसिंदिकम् उनका उस समय का आदश जीवन आज भी समाज के प्रतिष्ठित एव अमीरो को तथा गरीबो को इतन वर्षों के बाद भी एक सी प्ररणा दता है और विषम समय का सच्चा माग प्रदशक है।

समयानुसार उचित परिवतन एवम याग्य सुधार करने के भी आप हिमायती थ और इन्हीं सिद्धाता क अनुरूप सामाजिक नियमादि बनाकर उस पर चलन की प्रेरणा करते रहते थ। पुरानी अनुचित प्रथाओं को हटाकर समय क साथ समाज कदम बढ़ाय ऐसा हमेशा प्रयत्न करत रहत थे।

कौटुबिक जीवन —आपके अग्रज श्री गोमाचन्दजी का स्वर्गवास अल्पायु में होन स उनकी पुत्री श्री कुवरबाई का विवाह ठाटबाट बडी हा धूमधाम स काफी द्रव्य खच कर आप ही ने किया। आपके सतान न होने से श्रीमोहनलालजी को सादुर से बुलाकर खात (दत्तक) लिया व उनका भी विवाह अहमदनगर करीब ५०० पुरुष-स्त्रिया के शामिल बरात स्पेशल ट्रेन स ले जाकर बहुत ही उत्साहपूर्वक किया। बरात म स्त्रिया को उन दिनो ले जाया जाता था। उनके पौत्र चि० रतनलाल का ब्याह भी सातारा म धूमधाम से हुवा।

साहित्य सेवा का आदश —संसार म विद्या दो प्रकार की होती है (१) विद्या और (२) शास्त्र विद्या। पहली

वर्द्धमानस्या म हसी कराती है और जन्मांतर म जाव, इस विद्या के ससार नरकगामी भी हो सकता है। परन्तु दूसरा विद्या का तो लाभ मे सदा ही आनन्द होता है और 'ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष' इस सूक्ति के अनुसार जन्मांतर म जीव ज्ञान शास्त्रादि का पठन-मनन द्वारा कम क्षय कर क्रमश विवेक पूवक अतिम स य तक भी पहुँच सकता है मोक्ष पा सकता है। पहला प्रकार का विद्या हिंसात्मक प्रवृत्ति का पोषण कर अशांति उत्पन्न करती है जब कि दूसरी प्रकार का विद्या निमल ज्ञान की प्राप्ति कराकर सदसद् विवेक बुद्धि द्वारा सम्यक्त्व माग का प्रदान करने म एकमात्र सहायक होती है। सेठजी श्री इस रहस्य का भली भांति जानते थे। अत व अपने जीवन क उप काल मे ही विद्या व्यसनी हो गये थे। विद्या और साहित्य क प्रति उनकी जिज्ञासु वृत्ति दिन दिन अधिकाधिक निखरने लगी थी। अतः इसी साहित्याभिरुचीवश आपने साहित्य सदन नामक एक वाचनालय निजी व्यय स खोला था जो आज भी श्री मद्दूचंदजन पुस्तकालय नाम से प्रचलित है। उन्होंने ज्ञान की (जो हृदय के अज्ञान तिमिर को हटाने म दीपक क समान है) कमाई करने म जीवन के आखीर के क्षण तक भी संतोष न किया।

दिनचर्या —महान व्यक्तियों के दनिक कम से भी म हानता का आभास प्रतिबिम्बित होता है अनवरता है। आप रात्री ढलने पर चतुथ प्रहर म शय्या का त्याग कर देत थ। फिर सामायिक प्रतिक्रमणादि शुभ कर्मों से आपका दिवस प्रारम्भ होता था। तत्पश्चात स्वाध्याय देवदशन देवपूजा व्याख्यान श्रवण (यदि

श्री मांगीलालजी प्रमग हुए। परंतु प्रेम भाव वैसा ही बना रहा स० १९९१ के बाद के वर्ष में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती अमृतबाई का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। स० १९९३ में उनका भी स्वर्गवास हुवा। अंतिम समय में आपने उन्हें सुन्दर धर्म आराधना करवाई। आप भी अब जवानी की देहलीज पार कर वृद्धावस्था में आ पहुंचे थे। प्रकृति भी साधारण चल रही थी। स० २००४ मिती फागण सुदी ५ की रजनी में ४-५ दिन की मामूली बीमारी में धर्माराधन करते हुए आपका स्वर्गवास हुवा। अंतिम समय में कौटुंबीजन और समाज के भाई उपस्थित थे। परन्तु काल को कौन रोक सकता है? तीर्थंकर सरीखे श्रेष्ठ तम पुरुष भी आयु को क्षण भर भी बढ़ा नहीं सकते तो अन्य साधारण व्यक्तियों की ताकत ही क्या?

आपके पुत्र श्री मोहनलालजी भी आपसे धार्मिकता के सुन्दर संस्कार लिए हुए हैं। सेठजी की हयाती में उनके आखरी दम तक श्री मोहनलालजी ने उनकी खूब सेवा की। उनकी चाकरी में इन्होंने बाकी कुछ भी उठा न रखा। श्री मोहनलालजी साहब भी निरंतर धर्माराधना करते ही रहते हैं। सेठजी फतेचंदजी फतोदिया का पौत्र व प्रपौत्रादि से भरा पूरा परिवार है।

सेठ मागीलालजी फलोदिया

सेठ फतहच न्दजी के लघुभ्राता

आपन जिन मदिर उ

श्री मागीलालजी फलोदिया का जीवन वृत्तात

आपका जीवन का विशेष काल वहील बधु के जीवन म ही व्यतीत हुवा । इन दोनों की जोडा राम लक्ष्मण की सी थी । बडे भाई के हर काय में श्री लक्ष्मणजी जसे आज्ञानुवर्ती रहकर सह कार देत रहना ही श्री मागीलालजी ने अपना कर्तव्य समझा । वसे आपकी प्रकृति भी मिलनसार व साहसिक थी । व्यापार म तो वहील बधु से भी दो कदम आगे बढाते थ । स्थानीय नगर पालिका की उपसमिति म आप अध्यक्ष थ व आप ही के नतृत्व म शहर म जलपूर्ति के लिए लाल सागर टैंक की योजना बनी था । उसे जनता अभी भी याद करती है । आपका देहावसान स १९९३ मिती माघ वदी ५ को अग्रज श्री फतेचन्दजी सा के सामने ही हुवा । सन्तान म आपको एक सौ रतनी बाई नामक पुत्री है जिसका विवाह फिरणापार श्री फतेचन्दजी साहब क सामने ही हुवा । आपकी धर्मपत्नी श्रीमती पतासीबाई भी धर्म म अच्छी रुचि रखती हैं । आपने भी कई तीर्थ यात्राए की हैं तथा तपश्चर्यादि धर्म कार्य सदव चालू ही रहता है ।

अन्तिम शब्द-श्रीमान् फतेचन्दजी साहब फलोदियाजी से मरा बचपन से ही सपर्क आया है। मैंने तो आप श्री के सानिध्य म बठकर आपके जीवन को मरी स्वल्प बुद्धि के अनुसार अच्छी तरह स आंका है। मेरे पूज्य पिताजी चुन्नीलालजी मुथा स उनका बर्ताव बहुत ही प्रेम व सौहार्दपूर्ण रहा है । उसी वजह से

मैं तो यही मानता हूँ कि बाल्यावस्था म मुझे धम का रास्ता बताने का परम उपकार पूज्य पिताजी श्री ने किया है तो ऊँगली पकड कर दो कदम आगे बढाने का काय आप ही का रहा है। मैं आप श्री का कृतज्ञ हूँ। इसी उपकारवश होकर स्मरणांजली निमित श्री० फतेचदजी पटाल्पिया महोदय की जीवनी के दो शब्द लिखने की प्रेरणा जागृत हुई है। वरन न तो मैं कोई लेखक ही हूँ और न वक्ता ही। मैं श्री जन श्वेतांबर मित्र मडल का भी आभारी हूँ कि जिसने मुझे यह जीवन लिखने की आज्ञा प्रदान की।

उपरोक्त जीवनी से पाठकगण लाभ उठावेंगे और अगर कोई त्रुटि दृष्टिगत हो तो क्षमा करेंगे यह आशा व्यक्त करता हूँ। सेठजी श्री फतेच दजी के आदश कार्यों से आप श्री का नाम एवम यश चिर काल तक अमर रहेगा। अत म अधोलिखित किसी कवि के दोहे से मैं श्रावकरत्न फतेचन्दजी को अपनी श्रद्धांजली अपण करता हूँ।

> नाम रहता ठाकरां, नाणा नहीं रहत।
> कीर्ति करा कोटडा, पाड्या नही पडत ॥'

अमरावती श्री वीर स २४८६
श्री गौतमस्वामी केवल ज्ञान
कल्याणक दिवस

विनीत
पूनमचद मुथा
(मानद मत्री)

श्री जन श्वेतांबर मित्र मडल, अमरावती

अमरावती जिन मन्दिर के ग्रामाधिनाथ

श्री नागोरीजी दिगुमारी ... की पूजा पढ़ रहे

वचन पर विश्वास किस प्रकार हो सकता है। वचन पर विश्वास करने में बहुत न कारणों की आवश्यकता होती है।

शासनात् त्राण शक्तेश्च बुधः शास्त्रं निरुच्यते।
वचनं वीतरागस्य, तत्तु नान्यस्य कस्यचित् ॥

प्रशम २४वां श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय

भावार्थ—जिसमें आत्म स्वरूप का ज्ञान भरा हुआ हो, जिसमें कष, छेद, ताप द्वारा परीक्षा करने के लिये अनेक उपाय बताये हों और प्रत्येक वस्तु को नित्यानित्य रूप समझाने के लिये कई तरह की युक्तियों का प्रवाह बह रहा है और दुर्गति में जाते हुए जीवों को बचाकर क्रमिक उन्नति द्वारा तमाम उपाधियों से मुक्त कराने के लिये जिसका प्रयत्न हो ऐसे हितकर उपदेश भरा हो ऐसे शास्त्र जिसमें वीतराग भगवान कथित धर्म स्वरूप हो उसको शास्त्र कहते हैं।

प्रकृत में वक्ता जहां वीतराग हो तो उनके वचन पर या उनके कथन किये हुए शास्त्र पर विश्वास करना स्वाभाविक है।

वस्तु स्थिति इस तरह की होने पर भी सत्य वस्तु को सम्यक् रूप से जानने के लिये आत्मा को कई तरह की कठिनाइयां पड़ती हैं। क्योंकि आत्मा के ऊपर मिथ्यात्व के पर्दे अनादिकाल से पड़े हुए हैं। और जब तक आच्छादित पर्दे हटाये न जाय वहां तक वस्तु का सत्य स्वरूप नहीं जान सकते।

श्री वीतराग भगवान प्रणीत पदार्थ का यथार्थ स्वरूप

आप्तपन का निणय युक्ति-प्रयुक्ति से कर लिया जाय तो बताये हुए उपाय पर विश्वास जम जाता है। निणय करते ही समझ म आ जाता है कि यह महाराज तो परमार्थी—करुणा के भण्डार परोपकारी—और निस्वार्थी हैं। ये अपना पक्ष बढ़ाने के लिये नहीं अपितु सार जगत के आत्मा रत्नत्रय के अनुगामी बन भी उपाधि (कर्म) रहित हो जाय इस तरह के माग बताने व समझाने म इन्होंने अविश्रान्त प्रयत्न किया है, जिनकी भावना अत्यन्त शुद्ध है और जगत के तमाम जीवों के हेतु ही जिनका अविश्रान्त पुरुषार्थ स्फुरायमान होता है एस महाराज के वचन पर अवश्य विश्वास जम जाता है।

प्रकृत म—ऐसे सन्त—बड़े ही भ्रमराग को दूर करने—कराने म अत्यन्त निपुण होते हैं। जब मनुष्य इतना समझने लगे तो उसे जो प्रथम के ज्ञान द्वारा शका उत्पन्न हुई थी मिथ्या वासना फैल गई थी—वह सब स्वयं भगवान पर श्रद्धा हो जाने से नष्ट हो जाती है और श्रद्धारूप सुवासना का प्रवेश हो जाने से वही ज्ञान सम्यग्रूप म परिणमन हो जाता है।

प्रस्तुत म—वीतराग प्रणीत आगमादि ज्ञान पदार्थ का ज्ञान हो जाय और शुद्धदेव सुगुरु सुधर्म म श्रद्धा उत्पन्न हो जाय तो उसी का नाम समकित है। इस तरह का समकित किसी के पास जाकर शुकपाठ की तरह उच्चारण करने मात्र से नहीं मिलता है। समकित तो उन्हीं आत्माओं को प्राप्त होता है कि जो भद्रिक स्वभाव वाले और सम्यग् बुद्धि वाले हों।

कई बार ऐसा भी होता है कि भक्ति जीवों की अपनी कथा से प्रभावित कर उनके गुरु बन जाते हैं और उन भक्तों के पीछे धार धारा करते रहते हैं। यदि निज स्वार्थ सिद्ध करने को ऐसा किया जाय तो समझ लेना चाहिए कि यह भी एक साधन मात्र है। इस तरह केवल पाठ उच्चारण करने मात्र से ही समकित प्राप्ति हो जाती हो तो जगत् में असंख्य जीव प्रायः मनुष्य ही हो जाते और इस तरह का जो प्रपञ्च कर जीवों को भ्रमित करते हैं उनमें भी समकित का होना नहीं माना जाता। वह चाहे गुरु हो या शिष्य जो अपना टोला बढ़ाने को बाजी चलते रहते हैं और जगत उद्धारक के बनाये हुए मार्ग को या जगत् में जिन धर्म के अनुयायी जो वास्तविक मार्ग में चलते हों उनकी निन्दा रात दिन करते रहते हैं एसे जीवों में समकित का होना कैसे माना जाय ?

वस्तु स्थिति का विचार करते हुए समकित प्राप्ति के लिये दो कारण बताये हैं, प्रथम निसर्ग और दूसरा अधिगम जिस मनुष्य को निसर्ग से उत्पन्न हुवा हो वह नसर्गिक समकित और अधिगम से उत्पन्न हुवा हो वह अधिगमिक समकित कहा जाता है। नैसर्गिक अर्थात् स्वाभाविक अपने आप भवित-य के परिपाक से तीन कारण पूर्वक जिसको स्वाभाविक ही श्रद्धा जम जाय पदार्थ का ज्ञान हो जाय उसको नसर्गिक कहते हैं और अधिगम अर्थात गुरु महाराज के उपदेश से उत्पन्न हो उस को अधिगमिक कहते हैं। उदाहरणरूप बताया है कि जैसे किसी मनुष्य को ज्वर पीड़ा की शांति स्वभाविक ही हो जाती है, और किसी को औषधोपचार

स होता है। जम किसी माग भूल मनुष्य को सच्चा म स्वभाविक ही बिना पूछे मिलजाता है और किसी को पूछने मिलता है। इसी तरह स सम्यक्त्व भी किसी को स्वभाव से प्राप्त हो जाता है और किसी को गुरु उपदेश द्वारा प्राप्त हो है। समकित पाये हुए मनुष्य की सारी क्रियाएँ गिनती में आ है और समकित रहित की क्रियाएँ शून्यवत कही जाती हैं। तरह से समकित का नामा व स्वरूप इस पुस्तक में बताया है और समकित का विशेष स्वरूप लक्षण भूषण दूषण आदि यथार्थ भावना सहित जानने की जिज्ञासा हो तो विशेष आवश्य सूत्र तत्त्वार्थगति साधु प्रकाश सम्यक्त्व सप्तति सबू सम्यक्त्व कौमुदी समरत्न प्रकरण कर्मग्रन्थ कर्मप्रकृति, सर्मा पच्चासा प्राकृत समकित के स्तवनादि योगप्रदीप ग्रन्थ जान लेवें।

इस पुस्तक में बताये हुए विषयों की महत्वता आमुख नाम से समझ में आ सकेगी, और उसका विशेष वर्णन अवलो करने से ठीक जानकारी हो सकेगी, अतः पाठकों को लक्ष्य पू अवलोकन करना चाहिए। इस पुस्तक में प्रमाद से अथवा दृ दोष के कारण स्खलना रह गई हो तो पाठक सुधार कर पढ़ें सूचित करें। शुभम

धर्म सेवक—

मंगल विजय

ॐ

समकित प्रदीप

समकित की व्याख्या करने से पहले करण का खुलासा करना चाहते हैं क्योंकि करण का समझ लेने से समकित का स्वरूप जल्दी समझ में आ सकेगा।

भगवन्त परमात्मा ने करण के तीन भेद बताये हैं, पहिला यथाप्रवृत्ति करण, दूसरा अपूर्व करण और तीसरा अनिवृत्ति करण, मनुष्य को निज की श्रद्धा के अनुसार प्रवृत्ति कराने में जो अध्यवसाय सहायभूत हों और जिनके कारण श्रद्धा पैदा हुई रहे उसी को करण कहते हैं।

यथा प्रवृत्ति करण को समझाते हुए कहा है कि "यथा अनादि काल"—अर्थात् उपार्जन किये बिना और 'प्रवृत्ति' अर्थात्—प्रवर्तन प्रवर्तना, 'करण' अर्थात् करना—काम करना और उपयोग रहित प्रवृत्ति में साधन भूत अध्यवसाय विशेष रूप से है उसी को यथा प्रवृत्ति करण कहते हैं।

भावार्थ—जीव का स्वभाव है कि निज की अनिच्छा होते हुए भी उपयोग रहित प्रवृत्ति अनादि काल से करता रहता है और

उसम किसी भी तरह का परिवर्तन किये बगैर काय करते जाना उसी का यथाप्रवतिकरण कहत हैं। भिन्नता मात्र इतनी सी है कि प्रथम की प्रवृति में मिथ्यात्वभाव की जो विशेष प्रबलता थी वह अत व यथाप्रवतिकरण काल मे कुछ मन्द में मद हो जाता है जिसका स्वरूप समझना चाहिए।

अकाम निजरा द्वारा जीव को जब दो पुद्गल परावत जितना समय बाकी रहता है तब निविवेकता से धम श्रवण करने की इच्छा होती है और उस समय को शास्त्र में श्रवणाभिमुखी समय कहा है इसी तरह से ससार परिभ्रमण करने-मुक्ति प्राप्ति के लिये अर्थात आत्मा की सर्वोत्कृष्ट शक्ति का आविर्भाव करने म जब डेढ़ पुद्गल परावत जितना समय शेष रहे, उस समय म प्रथम की अपेक्षा से परिणाम कुछ शुद्ध होने से-धममाग स्वीकार करने व मार्गानुसारी क गुण प्राप्त करने की इच्छा होती है, और तदनुसार आ मा धममाग म प्रवृत होन की तयारी करता है उसी समय को सन्मुखी समय कहते हैं।

इसी तरह कर्मों को अकाम निजरा द्वारा कम करने वाला जीव जिस समय एक पुद्गल परावर्तन-ससार परिभ्रमण बाकी रखता है उस समय दूसरे बाह्याडम्बर वाले सब धर्मों का त्याग कर श्री वीतराग प्रणीत धम के प्राप्ति की इच्छा करता है और साथ हो मिथ्या वासना की मदता हो जाने के कारण आध्यात्म विषयक शुद्धाशुद्ध की पहिचान करने की भी उसको इच्छा हो जाती है इस तरह के समय विशेष को धम यौवन-काल कहते

हैं, और उपयुक्त यम योवन काल में हा यथाप्रवृत्तिकरण काय का प्रारम्भ करने लगता है, और जब यथाप्रवृत्तिकरण निम का काय करता है तब उसकी सत्ता के समय में अकाम निर्जरा विशेष रूप से करते हुए उपार्जित कर्मों का स्थिति को कम कर देता है।

कर्मों के आठ भेद

भगवान परमात्मा ने कर्मों के आठ भेद बताये हैं प्रथम ज्ञानावरणीय, दूसरा दर्शनावरणीय तीसरा वेदनीय चौथा मोहनीय पांचवा आयुष्य छठा नाम सातवाँ गोत्र और आठवाँ अंतराय इस तरह आठ कर्म हैं जिनकी स्थिति बताते हुए सबसे अधिक मोहनीय कर्म की स्थिति सित्तर कोड़ा कोड़ी सागरोपम की बताई है। किन्तु यथा प्रवृत्तिकरण मोहनीय कर्म की यह स्थिति क्षय होते होते, केवल पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम जितनी शेष रहजाती है। इसी तरह मोहनीय कर्म की स्थिति की तरह एक आयुष्य कर्म को छोड़ कर शेष छः कर्मों की स्थिति भी कम हो सकती है।

तात्पर्य—यह है कि पहिले जो व्यक्ति ७० कोड़ा कोड़ी सागरोपम की स्थिति वाले मोहनीय कर्म को बांधती थी वही व्यक्ति यथा प्रवृति करण बाद में-उसकी प्रबलता के कारण कुछ कम एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम की स्थिति वाले ही मोहनीय कर्म को मन्द रूप से बांधने लगती है और पुराने बांधे हुए कर्म

की भी इतनी ही स्थिति रख देनी है इस प्रकार आयु कर्म को छोड़ कर साता कर्म के विषय में समझ लेना चाहिए।

प्रश्न—उपयोग के सिवाय कर्म बंध की स्थिति किस तरह से कौन से उपायों से कम हो सकती है?

उत्तर—जिस तरह कोई मनुष्य भंडार में वस्तु कम डाले और अधिक निकाले तो भन्डार में वस्तु कम होती जाती है। इसी तरह से उपयोग रहित अकाम निर्जरा द्वारा भूख, तृषा, रुदन, भजन, ताड़न तापन आदि कई तरह के कष्टों को सहन करने से कर्म भी क्षय होते होते अन्त में बहुत थोड़े रह जाते हैं। अज्ञान पंचाग्नि तप को सहन करना और अज्ञान जन्य तपश्चर्या आदि द्वारा शुद्ध उपयोग रहित भी कष्ट सहन किया जाय तो अकाम निर्जरा अधिक होता है और अकाम निर्जरा से कर्म भी कम रह जाते हैं इस तरह के समय में मिथ्यात्व की मंदता के कारण कर्मबन्ध की स्थिति यदि क्षय हो जाय तो आश्चर्य नहीं है।

प्रथम जो व्यक्ति लम्बी स्थिति वाले कर्म बांधती थी, वही व्यक्ति ऐसी स्थिति में आ जाने से अल्प स्थिति वाले कर्म बांधने लगता है, इस तरह का कार्य यथाप्रवृत्तिकरण द्वारा ही होता है।

प्रश्न—बिना उपयोग के कर्मों की निर्जरा किस प्रकार होती है?

उत्तर—जिस प्रकार नदी में रहा हुवा पाषाण स्वतः पुद्गल गोल बार रूप में बन जाता है जिसके बनने में उपयोग की आवश्यकता नहीं होती किन्तु वह तो घिसत घिसते स्वयं ही गोलाकार, सुहाला और वजन में भी हलका हो जाता है तदनुसार आत्मा भी यथा प्रवृत्तिकरण नाम के अध्यवसाय द्वारा अनेक प्रकार के पञ्चाग्नि तप भूख तथा शीत आदि नाना प्रकार के कष्टों को सहन करता हुवा कर्मों की निर्जरा करता है। इस तरह से यथाप्रवृत्तिकरण के एक काम द्वारा कर्मों का कुछ अंश कम हो जाने से आत्मा का कम वजन हलका हो जाने से आत्मा भी उन्नति करता हुवा शुद्ध बन जाता है।

इस तरह के अध्यवसाय संसार में परिभ्रमण करते आत्मा ने अनन्त बार प्राप्त किये हैं–किन्तु उन अध्यवसाय द्वारा आत्मा के साथ सम्बन्ध रखने वाली अपने विकास वाली और विरुद्ध सत्ता के बनवाला अनन्तानुबन्धी कषाय मिथ्यात्व मोहनीय रूप राग द्वेषमय ग्रन्थी को तोड़कर आत्मा के वास्तविक स्वरूप को प्रगट करने की शक्ति नहीं होने से यथाप्रवृत्ति के कारण काल में भी आत्मा इस ग्रन्थी को नहीं तोड़ सकता। कहने का सारांश यह है कि अभव्य जीव भी यथाप्रवृत्तिकरण तो अनन्त बार प्राप्त कर सकते हैं किन्तु परिणाम की मन्दता के कारण कषाय की ग्रन्थी को तोड़ने में समर्थ हो ऐसा अध्यवसाय को प्राप्त नहीं कर सकते– किन्तु यथाप्रवृत्तिकरण को प्राप्त कर फिर अशुद्ध अध्यवसाय के गोवड़ में गिर पड़ता है।

पल्योपम का स्वरूप

कर्मों की स्थिता समझने के लिये पल्योपम का स्वरूप समझना चाहिए। शास्त्रकार महाराजा ने इस का स्वरूप इस प्रकार बताया है।

उत्सेधांगुल --अर्थात् अब पञ्चम आरे मनुष्य के अंगुल से नाप हुए एक योजन के ऊंडे व लम्बे प्याले के आकार जैसे कुवे की कल्पना करना और उस कुवे को एक दिन से सात दिन की आयु वाले युगलियक कोमल बालों के अग्रभाग से खूब ठूंस ठूंस कर कुवे को सम्पूर्ण भर दिया जाय और तत्पश्चात् भरे हुवे बालों के टुकड़ों में से एक एक टुकड़ा सौ सौ वर्ष के अंतरे से निकालता जाय इस तरह करते हुए कुवा जितने काल में खाली हो उतने समय को ही एक सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते हैं।

यद्यपि इस तरह से कुवा बनवाकर बाल भरने का काम किसी ने किया नहीं है किंतु भव्यात्माओं को समझाने के लिए एक पल्योपम की स्थिती बताने को काल्पनिक कुए का उदाहरण दिया है। क्योंकि इस प्रकार के सूक्ष्म काल का विचार सामान्य बुद्धि वाले मनुष्य के मन पर जल्दी नहीं जम सकता इसलिये उदाहरण द्वारा समझाया गया है।

इस प्रकार पल्योपम को दस क्रोड़ से दस क्रोड़ का गुणा करने से जो गुणन फल आता है उस को जैन दर्शन में सागरोपम"

विशेष को जो कहा जाता है। इसी प्रकार यहा भी पुद्गलों का परिवर्तन होता है इसी प्रकार यहा भी पुद्गलों का परिवर्तन होता है जिस वात विशेष म उनको पुद्गल परावर्तन कहते हैं।

इस प्रकार से व्युत्पत्ती समान पर प्रवृत्ति निमित्त रूढ़ार्थ विशेष अर्थ लिया गया है। इस तरह का अर्थ सब म घटित होने म किसी तरह की आपत्ति पैदा नहीं होती।

पुद्गल परावर्तन के भेद

एक तो द्रव्य पुद्गल परावर्तन दूसरा क्षेत्र पुद्गल परावर्तन तीसरा काल पुद्गल परावर्तन और चौथा भाव पुद्गल परावर्तन इस तरह म चार भेद बताये गये और प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर दो दो भेद म गिनने कुल आठ भेद होते हैं। यद्यपि यहा पर सूक्ष्म भेदों का जानना ही आवश्यकीय है। परन्तु बादर भेद को समझे बिना सूक्ष्म का ज्ञान सहज म नहीं हो सकता इसलिए बादर द्रव्य पुद्गल का थोड़ा सा स्वरूप बताया जाता है।

इस तरह की जानकारी आठ पहिले वगणा समझ लेना चाहिए जो आठ प्रकार की बताई गई है प्रथम औदारिक शरीर वगणा दूसरी वक्रिय शरीर वगणा तीसरी आहारक शरीर वगणा चौथी तजस शरीर वगणा पांचवी भाषा वगणा, छट्ठी

गणना नहीं हो सकती परन्तु औदारिक शरीर से उपयोग किया हो तो उसकी गणना होनी चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक वर्गणा रूप में पुद्गलों को ग्रहण करके छोड़ देना भी पृथक पृथक समझना चाहिए, और जिसके द्वारा स्थूल शरीर अर्थात् द्रव्य शरीर बन उसको औदारिक कहते हैं।

जो अनेक प्रकार की क्रिया करने में समर्थ हो छोटे से बड़ा हो सके बड़े से छोटा हो सके एक का अनेक हो सके अनेक का एक हो सके सूक्ष्म का स्थूल हो सके स्थूल का सूक्ष्म हो सके द्रव्य का अद्रव्य हो सके, अद्रव्य का द्रव्य हो सके भूमिचर का खेचर हो सके खेचर का भूमिचर हो सके इस तरह की अनेक शक्ति वाला हो उसको वैक्रिय कहते हैं। ऊपर कहे हुए तमाम पुद्गलों का उपयोग में लेकर परिणमन कर छोड़ देना यही वैक्रिय का अर्थ है।

तैजस शरीर की व्याख्या करते बताया है कि जो किये हुए आहार का पाचन करने में समर्थ हो, किसी को श्राप द्वारा जला देने में तथा दूसरे के किये हुए श्राप को शांत करने में पुद्गलों का उपयोग किया जाय और इसी तरह के अन्य काम करने में समर्थ हो उसको तेजस कहते हैं।

भाषावर्गणा—भाषा रूप में परिणमन कर छोड़ देना इसी तरह से श्वासोच्छ्वास वर्गणा को श्वासोच्छ्वास रूप में परिणमन करके छोड़ देना और इसी तरह से मनोवर्गणा—अर्थात् मनरूप

करे तो गिनती में आता है। इस तरह से अनुक्रम से काल कर मरने में सूक्ष्मभाव पुद्गल परावर्त समझना चाहिए और व्युत्क्रम से फरस कर मृत्यु पावे तो बादरभाव पुद्गल परावर्त समझना चाहिए।

सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त से—सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त करने में बहुतसा समय व्यतीत होता है और इससे भी अधिक समय सूक्ष्मकाल पुद्गल परावर्त में जाता है और इसमें भी अधिक समय सूक्ष्मभाव पुद्गल परावर्त में व्यतीत होता है।

संसार में परिभ्रमण करते आत्मा ने ऐसे अनन्ता पुद्गल परावर्त किये हैं तथापि अब तक अंत नहीं आया क्योंकि जब तक समकित की प्राप्ति नहीं हो जाय वहां तक तमाम काल निरर्थक समझना चाहिए। जिस प्रकार अंक बिना के अनुस्वार गिनती में नहीं आते तदनुसार समकित रहित काल को समझना चाहिए।

आत्मा यह विचार करे कि एक ही पुद्गल परावर्त अनंता कालचक्र जितना समय चला जाता है तो अनंता पुद्गल परावर्त में कितना समय जाय सो तो ज्ञानी महाराज ही जान सकते हैं।

उपरोक्त अनन्ता पुद्गल परावर्त में से जिस जीव को १ पुद्गल परावर्त जितना समय शेष रह तब उस आत्मा को य प्रवृत्तिकरण नाम का अध्यवसाय फरसता है सो बता चुके हैं

उत्कर्ष मार्ग

समकित शब्द का वास्तविक अर्थ सत्य तत्त्व दर्शन समझना चाहिए। जिसका स्वरूप जैन शास्त्रों में कई प्रकार से सुस्पष्ट रूप से बताया गया है, जो समझने के योग्य है।

दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय इन दोनों में भी दर्शन मोहनीय कर्म की उदयावस्था में आत्मशक्ति सम्यक् आच्छादित हो जाने से सत्य सूझ या ज्ञान नहीं हो पाता। इस तरह की अवस्था जब उपस्थित हो जाती है तब निजका वास्तविक स्वरूप जानने में परवस्तु व भेदज्ञान जानने में व आत्मस्वरूप, जीव, अजीव, देव, गुरु, धर्म आदि सद्भाव और श्रद्धा आदि एक भी किसी भी तरह से करने को ऐसी आत्मा समर्थ नहीं हो सकती और इस तरह की बाधकता में दर्शन मोहनीय का प्रतिबंध समझना चाहिए।

निज आत्म स्वरूप में स्थिर रहने लायक चारित्र को रोकने के परिणाम विशेष को चारित्र मोहनीय कहते हैं इसीलिए सबसे पहिले दर्शन मोहनीय को जीतने की आवश्यकता है। जहां तक दर्शन मोहनीय पर विजय न की जाय वहां तक वास्तविक श्रद्धा-विश्वास रूप श्रद्धा—समकित की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जब कर्म की स्थिति घटती है तो दर्शन मोहनीय भी घट जाता है इसीलिए सब कर्मों की स्थिति जानने की आवश्यकता है।

कम आठ प्रकार के बताए जिनके नाम बता चुके हैं तथापि प्रसंगवश फिर बताते हैं। आठ प्रकार के कर्म–प्रथम ज्ञानावरणीय, दूसरा दर्शनावरणीय तीसरा वेदनीय और चौथा अंतराय इन चार कर्मों में प्रत्येक की स्थिति तीस कोडा कोडी सागरोपम की है पांचवें मोहनीय कर्म की स्थिति सित्तर कोडा कोडी सागरोपम की है छट्ठे नाम कर्म और सातवें गोत्र कर्म में से प्रत्येक की स्थिति बीस कोडा कोडा सागरोपम की है और आठवें आयु कर्म की स्थिति तैंतीस कोडा कोडी सागरोपम की है। इन सबकी स्थितियाँ जो बताई हैं ये सब उत्कृष्ट समझनी चाहिए। जघन्य स्थिति वेदनीय कर्म की बारह मुहूर्त की है और मतांतर अंतर मुहूर्त की भी बताई गई है। नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है, और बाकी के सब कर्मों की जघन्य स्थिति अंतर मुहूर्त की बताई गई है—दो समय से लेकर दो घड़ा में एक समय बाकी रहा हो उसे अंतर मुहूर्त कहते हैं। समय का सूक्ष्म काल विशेष कहते हैं आंख बंद करके खोला जाय इतनी देर में असंख्याता समय हो जाते हैं।

आत्मा के साथ कर्म द्रव्य का जितने समय तक सम्बन्ध रहता है, उतने समय को स्थिति कहते हैं। निश्चय रूप से जब तक सम्बन्ध रहे उसको उत्कृष्ट स्थिति समझना और कम से कम जहां तक रहे उसको जघन्य स्थिति कहते हैं। और इनके मध्य का जो काल जाय उसे मध्यम स्थिति कहते हैं।

आत्मा के परिणाम विशेष को लेकर आयु कर्म का त्याग करने

के बाद बाकी के कर्मों की स्थिति को भी सर्वथा क्षय करके, एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम में कुछ कम—जितनी बाकी रहे उस परिणाम विशेष को यथाप्रवृत्तिकरण कहते हैं, और इस तरह के परिणाम आत्मा को कई बार आ जाते हैं, और ऐसे ही परिणाम द्वारा नदी—पाषाण न्याय की तरह कर्म समूह को अमुक प्रमाण से क्षय कर देता है। परन्तु जिस जीव की भवितव्यता का परिपाक नहीं हुआ हो—ऐसे भव्यात्मा और अभव्यात्मा भी इतनी हद तक बढ़ जाते हैं, और यहां तक आकर आगे प्रगति नहीं कर सकते और यहीं से पीछे हट जाते हैं और पीछे हटने में सामग्री की विकलता ही समझना चाहिए।

आत्मा को बंधन में रखनेवाली राग द्वेष रूपी मजबूत ग्रन्थी विघ्नरूप है जो आत्मा को आगे प्रगति नहीं करने देती और राग द्वेष रूपी ग्रन्थी का छेद किया जाय तो आगे गति करने में रुकावट नहीं आती। शास्त्रकार महाराजा फरमाते हैं कि राग द्वेष का छेद करने में अपूर्वकरण—ही कारणभूत माना गया है।

अज्ञानतापूर्वक कष्ट सहन करने से—भोगे हुए दुःख द्वारा जो आत्म शुद्धि होती है उसको यथाप्रवृत्तिकरण कहते हैं जिसका वर्णन पहले आ चुका है।

ऊपर बताये हुए यथाप्रवृत्तिकरण से जो आत्म शुद्धि होती है उससे अधिक आत्म शुद्धि के साधन प्राप्त हों, वीर्योल्लास भी विशेष रूप से होता रहे तब राग द्वेष की ग्रन्थी का छेद करने में

उद्यमवान हो सकता है और इस तरह के अध्यवसाय प्राप्त हो उसको अपूर्वकरण कहते हैं। अपूर्वकरण नाम इसलिए कहा गया है कि आत्मा को इस प्रकार का अध्यवसाय पूर्व में कभी प्राप्त नहीं हुवा हो, और ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हो जाय तो अपूर्वता की कोटि में गिना जाता है—इसलिए अपूर्वकरण कहते हैं। अपूर्वकरण–अध्यवसाय में अपूर्व कार्य होते हैं, (१) स्थितिघात, (२) रसघात, (३) गुण श्रेणी और (४) गुण सक्रमण इन चारों कर्मों की अपूर्वता होने से उस अध्यवसाय आर्य उनको अपूर्वकरण कहते हैं।

इस विषय को और भी स्पष्ट कर समझाया है कि स्थितिका घात हो, उसका स्थितिघात कहते हैं। स्थिति अर्थात् ज्ञाना वरणीय आदि कर्मों का आत्मा के साथ अमुक समय तक रहना उसको स्थिति कहते हैं। और घात अर्थात् उन कर्मों का क्षय करना घटाना कम करना उसको स्थितिघात कहते हैं।

कर्मों की स्थितियों का कम करने के साधनभूत जो परि णाम उत्पन्न हुए हो उसको 'अपवर्तनाकरण' कहते हैं और अपूर्वकरण अध्यवसाय जब प्राप्त हुआ हो तब साथ ही 'अपव र्तनाकरण' की भी आवश्यकता होती है।

। ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की स्थिति जो बहुत लम्बे समय तक भोगने की है, इस तरह की स्थिति बंध को अपवर्तनाकरण द्वारा जो क्षय की जाय उसको स्थितिघात कहते हैं–अर्थात्

बहुत समय तक भोगने की स्थिति वाले कर्म का उपार्जन किया हो ऐसे कर्मों की स्थिति को अपवर्तनाकरण द्वारा कम करके अल्प समय में ही संञ्चित कर्मों को भोग सकें ऐसी स्थिति में लाकर रखना उसका नाम स्थितिघात बताया है।

आत्मा के परिणाम विशेष द्वारा जो रस उत्पन्न होता है वह रस मीठा हो या कडुवा हो कर्म पुद्गलों में जैसा भी शुभा-शुभ रस का समावेश हुआ है उसको "रस" कहते हैं और घात अर्थात कम करना-घटाना-मन्द करना-क्षय करना इस तरह से अपूर्व करण में अशुभ परिणाम को कम करना और शुभ परिणाम को बढाना। इस तरह करने से शुभ परिणाम की वृद्धि का कार्य अपूर्व माना गया है, और अपूर्व ही समझना चाहिए।

उदाहरण से समझाते हैं कि जैसे नीम के पत्ता में से एक सेर रस निकाला हो-उसमें जितना कडुवापन है उसको एक ठाणिया रस कहते हैं उसी रस को फिर से उकाल कर चौथा भाग जला देने से तीन पाव रस बाकी रहा हो-उसमें जो कड्वा पन है वह पहले के सेर भर रस से दो गुणा होने से दो ठाणिया रस कहलाता है, इसी तरह से सेर भर रस में से दो भाग जला दिए बाद बाकी के रस में जो कड्वास रहती है वह प्रथम के सेर भर रस से जो थी उससे तीन गुणी हो जाने से तीन ठाणिया रस कहते हैं। इसी तरह से एक सेर भर रस को उकाल कर तीन पाव रस जला दिया जाय तो पाव भर रस बचता है उसमें जो कड्वास सेर भर रस में थी उससे चौगुनी हो जाने से चार

ठाणिया रस कहते हैं। इस तरह से रस स्थान रहता है, इस उदाहरण से कडवा रस समझ में आई—इसी तरह से मीठे रस का उदाहरण गन्ना-सांठे-गन्ने में कुछ भी नाप से समझ कर मीठे रस का उदाहरण समझ लेना चाहिये।

अब इस उदाहरण का उपनय बताते हैं कि कडुवा रस अशुभ कर्म जैसा और मीठा रस शुभ कर्म जैसा समझना—अशुभ कर्म के पुद्गल में भी एक गुणा, दो गुणा, तीन गुणा और चार गुणा रस अध्यवसाय-परिणाम की धारा के अनुसार हो सकता है। बात तो समझ में आने जैसी है तथापि एक और उदाहरण बता कर विषय स्पष्ट कर देते हैं—जैसे एक मनुष्य को दूसरे के साथ वैर भाव उत्पन्न हो गया हो और परस्पर की बोल चाल से क्रोधाग्नि बढ़ जाने से मन में आता है कि इसके एक थप्पड़ मार कर सीधा कर दूं। वर्तमान उपाय होने के बदले बढ़ता जाय और आस पास के संयोग—निमित्त भी इसी प्रकार के मिलते जांय सहकार भी मिलता जाय तो अध्यवसाय बहुत बहुत प्रहार करने का विचार उत्पन्न हो जाता है और शारीरिक हानि पहुँचाने की सूझती है। विचार करना चाहिए कि प्रथम के अध्यवसाय में और अंत के अध्यवसाय में कितना अन्तर हो गया है। इसी तरह से निमित्त विशेष मिलता जाय और द्वेष की सामग्री सम्पन्न होकर क्लेश बढ़ता जाय तो अध्यवसाय-प्रहार करने के भाव में परिणित हो जाते हैं और परिणाम स्वरूप अनिष्ट भी हो जाता है। इस तरह विशेष निमित्त के मिल जाने से अशुभ परिणाम से

सञ्चय किए हुए कम पुद्गलो म जा रस था-वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और अनुक्रम से एक गुणा दो गुणा तीन गुणा और चार गुणा होता चला गया। इसी तरह तीव्र तीव्रतर और तीव्रतम अध्यवसाय द्वारा ग्रहण किए हुए कम पुद्गलो के रस म भी प्रथम म एक गुणा दो गुणा तीन गुणा और चार गुणा रस हो जाता है। इस तरह के विचित्र प्रकार के अध्यवसाय द्वारा बाँध हुए कम पुद्गलों म एक गुण से लकर चौगुन की हद तक पहुँच हुए अशुभ रसो को अपवर्तनाकरण द्वारा घटात घटात कम कर देना और इस तरह के अनिष्ट कम बध द्वारा जो दुख विपाक का उदय होना वाला था उसको रोक दिया गया-इसका नाम रसघात कहा गया है। इस तरह से ऊपर बताये हुए दोना काय जब अपूवकरण आता है तब अपूव ही हो जाते हैं।

हाँ—इतना अवश्य कहना पड़गा कि पहिली अवस्था म परिणाम शुद्धि बहुत कम थी-तो रसघात भी अल्प था, और जब परिणाम शुद्धि विशेष प्रकार से अपूव हो जाने से रसघात भी विशेष विशेष होता है इस पर लक्ष्य रखना चाहिए।

गुण श्रेणी का स्वरूप

ऊपर बताई हुई सीमा तक पहुँचने से पहले निर्जरा के हेतु कम पुद्गलो की राशियाँ बहुत समय व्यतीत होने तक थानी थोडी एकत्र की जाती थी और जब इस कोटि में आ जाते हैं तो थोडे समय म ही बहुत सी राशियाँ एकत्र हो जाती हैं

तरह के सग्रह से अशुभ कर्म पुद्गलों को हटाने के हेतु जो गणिया थोड़े समय में ही विशेष रूप से सग्रह की गई हैं–ऐसे कार्य को भी अपूर्व कार्य कहा जाता है।

गुण संक्रमण

गुण सक्रमण के रूप में यू बताया है कि, शुभ अध्यवसाय से उत्पन्न हुए हों–ऐसे शुभ पुद्गलों में–अशुभ कर्म के पुद्गलों का समय समय में असख्यात गुणा विशेष समावेश करते जाना जिसका नाम गुण सक्रमण है।

प्रथम समय में जो समावेश किया हो उसमें असख्यात गुणा अधिक दूसरे समय में समावेश करे, तीसरे समय में भी असख्यात गुणा विशेष समावेश करे और चौथे समय में उसमे भी असख्यात गुणा विशेष मिलाना इस तरह से अनुक्रमानुसार जहा तक अपूर्व करण का काल है वहां तक कर–मतलब यह है कि परिणाम की विशुद्धि द्वारा अशुभ को भी शुभ रूप में लाना उसी को, गुण सक्रमण कहते हैं और ऐसा करना भी अपूर्व माना गया है।

बंधन का स्वरूप

आत्म शुद्धि अल्प होने के कारण जो आत्मा किसी समय में ... की स्थिति वाले कर्म बाधता था, वही आत्मा आत्म

शुद्धि विशेष हो जाने से थोड़े काल की स्थिति वाले कर्म बांधने लगता है-अर्थात् प्रथम समय से दूसरे समय में कम स्थिति वाले बांधता है, तीसरे समय में और भी कम स्थिति वाले और चौथे समय में और कम स्थिति वाले बांधता है, इस तरह से अन्तर मुहूर्त तक समझना चाहिए। इस तरह का अपूर्व कार्य किया जाय—यह अपूर्वकरण में होता है।

अनिवृत्ति करण

आत्म विशुद्धि के साधन भूत वीर्योल्लासकी सीमा जब बढ़ती जाती है, तो ऐसी अवस्था में आत्मा दर्शन मोहनीय पर विजय पा सकता है। इसलिए सिद्ध होता है कि दर्शन मोहनीय पर विजय पाने के लिए साधन भूत जो अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं उसका नाम अनिवृत्तिकरण बताया है। अनिवर्तिकरण आने पर जिसका विचारा हुआ कार्य पूरा किए बगैर अध्यवसाय पीछे नहीं हटते और पूरा करते हैं—अतः अनिवृत्तिकरण नाम कहा गया है।

ऊपर बताए हुए तीन कारणों में से जो जीव अपूर्वकरण द्वारा कषाय-की ग्रंथी भेद करने को भाग्यशाली होता है उसी आत्मा को अनिवर्तिकरण का साम्राज्य प्राप्त होता है-अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए कारणभूत सम्यग् दर्शन को प्राप्त कर सकता है।

अपूर्वकरण द्वारा अपूर्व कार्यों से ग्रंथी भेद करके आत्मा आगे गति कर सकता है और उस आत्मा को अनिवृत्तिकरण के अध्यवसाय द्वारा-मिथ्यात्व मोहनाय कम-द्र जो बहुत समय की स्थितिवाल धारते हैं उनके दो भाग करता है-जिसमें से प्रथम भाग के कर्म द्रव्य तो बहुत समय म भोग सकता है एवं मिथ्यात्व मोहनीय कर्म समूह को-ऐसी स्थिति म ले आता है कि जिसका क्षय अंतर मुहूर्त म ही कर सके और दूसरा भाग तो विशेष समय तक भोगने के लिये कायम रहता है। इस तरह से मिथ्यात्व मोहनाय कर्म के द्रव्य का एक भाग तो विशेष समय तक ही स्थिति वाला और दूसरा भाग अंतरमुहूर्त तक की स्थितिवाला इस तरह के दो विभाग किये जाय जिनको जैन शास्त्र में अंत करण कहते हैं। अंत करण का अर्थ यह होता है कि अंतर करना विभाग करना बटवारा करना आदि।

ऊपर बताये हुए अनिवृत्तिकरण में स्थित रहनेवाली आत्मा पहिले अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले कर्म द्रव्य का अनुभव करने लगता है और शेष दीर्घ समय की स्थिति वाले कर्म द्रव्य को आच्छादित-भारी हुई अग्नि की तरह अन्तर मुहूर्त तक उदय में न आवे ऐसा कर देता है।

अन्तर्मुहूर्त स्थिति वाले पहले भाग का सम्पूर्ण अनुभव करने के बाद आत्मा को उस समय मिथ्यात्व का जरा मात्र भी उदय न से सम्यक्त्व अर्थात् सम्यक्त्व दर्शन प्राप्त होता है। ऐसे त दर्शन की प्राप्ति से आत्मा को अत्यन्त-अपूर्व-अकथित

ज्ञान प्राप्त होता है और जब सम्यग दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तो फिर उस आत्मा का वीतराग भाषित तत्त्व के सिवाय अन्य किसी पर राग नहीं जाता—वह शुद्धदेव को देवरूप शुद्धगुरु को गुरुरूप और शुद्धधर्म को धर्म रूप मानता है इस तरह से जिस वस्तु का जैसा स्वरूप है, उसको वैसे ही स्वरूप में समकिती आत्मा पहिचानता है।

समकिती आत्मा जीवादि सात तत्वों में से या नौ तत्वों में से–हेय को त्याग करने में उपादेय को ग्रहण करने में और ज्ञेय, को जानने की विशेष इच्छा वाला होता है, और ऐसी अवस्था आने के बाद कषाय भी मन्द हो जाते हैं वैराग्य वासना उत्पन्न होती है मोक्षाभिलाषा का उद्भव होता है, अनुकम्पा उत्पन्न होती है और प्राणान्त कष्ट आने पर भी आस्तिकता को नहीं छोडता, धर्म श्रवण करने का अभिलाषी धर्म का पालन करने में समर्थ, और परिपूर्ण श्रद्धावान होता है, इस तरह की वृत्ति होती है, यही समकिती जीव के लक्षण होते हैं।

तत्वों का स्वरूप और देव, गुरु धर्म का स्वरूप जानने की इच्छा समकिती आत्मा को विशेष रूप में होती है जिसका स्वरूप तत्वाख्यान ग्रंथ में प्रतिपादित है।

समकित के भेदों का दिग्दर्शन

समकित के तीन भेद बताये हैं, प्रथम औपशमिक समकित दूसरा क्षायोपशमिक समकित और तीसरा क्षायिक समकित इस

तरह तान अ-ा म स ऊपर जो वयन किया गया है वे सब ग्रौप दामिक समकित व भ- समझने चाहिए ग्रौपगमिक समकित प्राप्त होन बाद ग्रतर मुहूत तक रहता है ग्रौर क्षायोपशमिक समकित दूसरी तरह का है जिस का वणन इस प्रकार है।

ग्रौपगमिक समक्ति म रहो हुए ग्रात्मा मिथ्यात्व मोहनीय क बावो र- हुए कम द्रव्य को शुद्ध बनाने का प्रयत्न करता है, ग्रौर उतने समय मे कम द्रव्य शुद्ध भी होत हैं-परन्तु सवथा शुद्ध ही हो जाते हा ऐसा भी नहीं है उनम से कितने ही शुद्ध हो जाते है कितने ही ग्रद्ध शुद्ध हो जात हैं ग्रौर कितने ही ग्रशुद्ध रह जात हैं। जो द्रव्य शुद्ध बन जाते हैं, उनको समकित मोहनीय पुद्गल कहत हैं। जो ग्रद्ध शुद्ध होते हैं, उनको मिश्र मोहनीय ग्रौर जो ग्रशुद्ध रह गये हों उनको मिथ्यात्व मोहनीय पुद्गल कहत हैं।

एस पुद्गल का विशप समझन क लिय उदाहरण बताते हैं कि जिस प्रकार दीपक क ऊपर कोई मलीन पदाथ ढक दिया हो तो दीपक का प्रकाश बाहर फलता नहीं है यद्यपि दीपक है, प्रकाश वाला भी है तथापि मलीनता की ग्राड म होने से उजियाला नहीं कर सकता ग्रौर ग्रधकार जसा दिखता है। इस तरह के दीपक पर से मलीन पदाथ जो ग्राच्छादित है उसे हटा । जाय तो दीपक का प्रकाश बाहर फैल जाता है इसी तरह मोहनीय कम द्रव्या म से मिथ्यात्व रूपी मलीनता को -ा से पुद्गल इतने शुद्ध बन जाते हैं कि उनके वेदन समय में

और वास्तविक पदार्थ पर श्रद्धा कराने में वह सहायक बन जाते हैं। इस तरह से शुद्ध द्रव्यों द्वारा अनुभव जनित परिणाम विशेष हो उसको क्षायोपशमिक समकित कहते हैं।

औपशमिक समकित में रही हुई आत्मा ऊपर बताये हुए कथन के अनुसार मिथ्यात्व मोहनीय कर्म द्रव्य के तीन विभाग करती है। जिस समय औपशमिक समकित का समय पूरा होता है उस समय में आत्मा को शुद्ध पुञ्ज के अनुभव द्वारा यदि शुद्ध ही अध्यवसाय हो तो उसको क्षायोपशमिक समकित वाला समझना चाहिए मिश्र का उदय हो तो मिश्र मोहनीय वाला समझना, और पतित अध्यवसाय के कारण अशुद्धता का उदय हो तो उसको मिथ्यात्वी समझना चाहिए।

औपशमिक और क्षायोपशमिक की भिन्नता

श्रद्धा-विश्वास-प्रतीति-एतबार यह समकित के पर्याय वाचक शब्द हैं, यह जिस प्रकार औपशमिक समकित में होते हैं उसी तरह क्षायोपशमिक समकित में भी होते हैं—इनमें भिन्नता इतनी ही समझना चाहिए कि औपशमिक समकित में मिथ्यात्व मोहनीय के प्रदेश का उदय जरामात्र भी नहीं होता है और क्षायोपशमिक समकित में उदय बराबर होता है प्रदेशोदय—अर्थात् मिथ्यात्व मोहनीय के प्रदेशों का सूक्ष्म उदय समझना।

क्षायोपशमिक समकित में मिथ्यात्व मोहनीय कर्म द्रव्यों का प्रदेशोदय, और समकित मोहनीय कर्म द्रव्यों में विपाक से उदय

का अनुभव अवश्य होता है और औपशमिक समकित में इस तरह का अनुभव तनिक भी नहीं होता। इनके समय स्थिति में भी अन्तर है औपशमिक समकित का समय अन्तर मुहूर्त का है, और क्षायोपशमिक समकित का समय अधिक से अधिक छासठ सागरोपम से कुछ अधिक और कम से कम अन्तर मुहूर्त का बताया है।

क्षायोपशमिक को तो पौद्गलिक होने के कारण उपचार से समकित कहा जाता है और औपशमिक समकित को तो वास्तविकता से गिना गया है।

क्षायिक समकित का स्वरूप

क्षायिक समकित तो ऊपर कथन किए हुए दोनों समकितों से विशेष उच्च कोटि का माना गया है जो ऊपर कहे हुए दर्शन मोहनीय के तीनों पुंज को और अनंतानुबंधी अर्थात् अतितीव्र परिणाम वाले क्रोध मान माया और लोभ इन चार कषायों को मिलाते हुए—सातों द्रव्यों का क्षय होता है तब क्षायिक समकित उत्पन्न होता है। जिसमें भी छद्मस्थ ज्ञान वाले के क्षायिक को तो अशुद्ध क्षायिक कहते हैं और केवली अर्थात् सर्वज्ञ के क्षायिक को शुद्ध क्षायिक कहते हैं। छद्मस्थ ज्ञान वाले को अनंतानुबंधी कषाय का क्षय तो होता है परन्तु सामग्री विशेष के कारण अवशेष कषाय भी अनंतानुबंधी रूप से परिणित

- गति में ले जाने को साधनभूत होने से परिणाम की

विचित्रता के कारण अनन्तभाविक कहा गया है। उदाहरण से स्पष्ट करते हैं कि जिस तरह किसी साहूकार या विणय समय चोरों के सहवास में प्रवास हुआ हो तो उस साहूकार को भी चोरों की गिनती में गिनते हैं—इसी तरह से ऐसे व्यक्ति को संयोगानुसार प्रमाद क्षायिक में समझते हैं—इस तरह की घटनायें केवली समय में सर्वथा नहीं होने से व क्षायिक समकित वाले कहे जाते हैं।

समकित की स्थिति और भेद

समकित की स्थिति का बयान पहिले किया है—परन्तु यहां भेद का वर्णन करना है और स्थिति के भेद के साथ सम्बन्धित होने से स्थिति का बयान संक्षेप में बताते हैं।

प्रथम—उपशम समकित की स्थिति अंतरमुहूर्त की होती है *सास्वादन समकित की स्थिति उत्कृष्ट छ आवलि का काल* उस की है बल्कि समकित एवं समय तक रहता है क्षायिक समकित तेतीस सागरोपम से कुछ अधिक रहता है और क्षायोपशमिक समकित छासठ सागरोपम से कुछ अधिक रहता है अधिक का मतलब मनुष्यभव के आश्री समझना—जैसे क्षायिक समकिती जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की आयुष्य वाला देव होता है और देवलोक से च्यवकर मनुष्यभव में चारित्र लेकर सिद्धि पद पाता है अतः मनुष्य भव का जितना समय जाय वही अधिक रूप बताया है। इसी तरह

... चार पांच अनुत्तर—

म ततीस सागरोपम के आयुष्य वाला अथवा तीन बार अच्युत देवलोक मे बाईस सागरोपम के आयुष्य वाला देव होकर च्यवन कर मनुष्य भव म आकर चारित्र अंगीकार कर मो क्ष प्राप्त करता है। अत मनुष्य भव म जितना समय जाय उसका अधिक रूप मे बताया है।

समकित स श्रद्धा म और भी तीन भेद बताये हैं (१) कारक, (२) रोचक और (३) दीपक अर्थात् शुद्ध श्रद्धा स शुद्ध भाव से प्रमाद रहित हो यम नियम का आचरण करता हो उसको कारक समकितवान समझना चाहिय। ऐसी प्रवृत्ति उच्चकोटि क सातवें गुण स्थान मे रहे हुए महात्माओ म होती है।

शुद्ध श्रद्धा का अनुकूल अप्रमत्त भाव से यम नियमादि या के आठ अग का आचरण स्वय नहीं करता हो पर तु ऐसा आचरण करने वाले को देखकर प्रसन्न होता हो—प्रमोद पाता हो औ धर्मवान धर्मीजीव को देखकर आनंदित होता हो अथवा भगवन परमात्मा क शासन पर प्रेम रखता है शासन पर राग रोम रो म व्याप्त हो, साथ ही इस तरह का आचरण करने का अभिलाष भी हो, स्वय कारणवशात् आचरण करने म असमर्थ हो तो ऐ जीव को रोचक समकितवान समझना चाहिए।

जो आत्मा ऊपर बताया हुआ आचरण स्वीकार न करते हों नहीं पालते हों पालन म कई तरह की बहानाबाजी बताकर अपनी योग्यता म क्षति न आने का मिथ्या प्रयत्न करते हो, और उपदेश देने म पावदी हो, वाक्कला छटा बोलने की चतुराई में

प्रवीण हों पडिकमणे बनाने में अथवा पढ़िमाई पाने में निपुण हों परन्तु स्वयं आचरण साक्षात् नहीं करते हों तो उनको भी व्यवहार सम्यक्त्ववान समझना चाहिए और ऐसा सम्यक्त्व अभवी आत्मा भी पा सकता है। इस तरह सम्यक्त्व के और भी अनेक प्रकार हैं जैसे (१) निश्चय सम्यक्त्व (२) भाव सम्यक्त्व आदि बहुत से भेद हैं जिनका वर्णन लोक प्रकाश तत्व भाष्य आदि ग्रन्थों में विस्तार रूप से प्रतिपादित है।

उपशम सम्यक्त्व से गिरा हुआ जीव उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्म बाँधता है परन्तु तीव्र अनुभाग का बंध नहीं करता—इस तरह का वर्णन कर्म ग्रंथ में आता है। सिद्धांत के मतानुसार भिन्न ग्रंथी वाले मिथ्या दृष्टि का भी उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मों का बंधन नहीं होता है। इस तरह दोनों पक्ष में स्थिति बंध के लिए जो प्रश्न है वह ऊपर की दृष्टि से विचार किया गया है और अनुभाग की चर्चा यह विवादास्पद भी है तो भी इस विषय में तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो ग्रन्थान्तर के अनुसार विवाद को कोई स्थान नहीं रहता है क्योंकि एक पक्ष ने तो स्थिति को उत्कृष्ट मानकर भी अनुभाग को तीव्र नहीं माना है, और दूसरे पक्ष ने स्थिति बंध को ही उत्कृष्ट स्वीकार नहीं किया है तथापि सैद्धान्तिक अभिप्राय से स्थिति बंध को उत्कृष्ट नहीं मानकर भी अनुभाग की चर्चा में नहीं आये हैं इसलिये यह सिद्ध होता है कि स्थिति बंध उत्कृष्ट नहीं होने पर भी अनुभाग बंध में अनन्तानुबंधी कषाय के उदय से तीव्रता अवश्य होनी चाहिए, परन्तु कर्म ग्रंथ में दिये हुए कथन के अनुसार

भी हो तो भी अनुभाग वैसा उत्कृष्ट नहीं होता है इसी कारण से अकेला उत्कृष्ट स्थितिबंध तीव्रता नहीं बता सकता। ऐसी स्थिति में वास्तु स्थिति दोनों की एकसी ठहरती है--केवल अभिप्राय अंतर का भिन्नता है और कोई विशेष बात नहीं है, इसको लक्ष्य में रखना चाहिए।

प्रश्न यह होता है कि क्षायोपशमिक समकित भी वास्तविक पदार्थ पर श्रद्धा उत्पन्न करानेवाला है तो फिर क्षायिक समकित को किस तरह रोक सकता है ? अर्थात् क्षायोपशमिक समकित की विद्यमानता में क्षायिक समकित क्यों नहीं आता है ?

इसका उत्तर इस प्रकार से है कि क्षायोपशमिक पुद्गल के लिये सोचते हैं तो वास्तविक में इसके पुद्गल मिथ्यात्व मोहनीय की जाति के हैं, और क्षायिक समकित तो मिथ्यात्व मोहनीय पुद्गलों के अभाव से होता है, इसलिये क्षायोपशमिक समकित को क्षायिक समकित के उत्पन्न होने में आवरण रूप माना गया है।

प्रश्न होता है कि जब क्षायोपशमिक समकित क्षायिक समकित का आवरण रूप है तो फिर इसके द्वारा आत्म धर्मरूप श्रद्धा किस तरह हो सकती है ?

प्रश्न असंगत नहीं। बात समझने जैसी है जिसको उदाहरण से समझाते हैं कि, जिस प्रकार किसी स्वच्छ मणि रत्न के ऊपर कपड़ा आच्छादित कर दिया जाय तो उसका प्रकाश कम दिखने है और कपड़ा हटा लिया जाय तो प्रकाश स्वच्छ दिखता

पहिले तीन कारणों द्वारा समकित प्राप्ति का मार्ग बताया गया वह क्रमग्रंथ के अनुसार समझना और सद्धान्तिक अभिप्राय से तो यथाप्रवृत्तिकरण ध्यान के बाद उत्पन्न होनेवाले शुद्ध अध्यवसाय रूप अपूर्वकरण नाम के अध्यवसाय से मिथ्यात्व के पुद्गलों को शुद्ध बनाकर उनके तीन विभाग करता है—जिनमें प्रथम भाग के पुद्गल में समकित को रोकनेवाला जो अशुभ रस है उसका दूर करता है और मिथ्यात्व के पुद्गल जो शुद्ध बन चुके हैं उनके अनुभव से समकित माना जाता है, ऐसे समय जो परिणाम धारा बन्ती हो तो अनिवर्तिकरण द्वारा पहिले ही क्षायोपशमिक समकित प्राप्त कर लेता है अर्थात् शुद्ध पुद्गल वाले प्रथम भाग का अनुभव करता है और बाकी के दोनों भाग में दूर रहता है।

समकित से पतित आत्मा जब कभी फिर से समकित पाता है, तब भी पहिले अपूर्वकरण द्वारा मिथ्यात्व के पुद्गलों को शुद्ध बनाकर अनिवर्तिकरण के द्वारा फिर से क्षायोपशमिक प्राप्त करता है। इस तरह का अपूर्वकरण-वालिक परिणाम क्वचित होता है, इसलिए अपूर्वकरण कहना यथोचित है।

औपशमिक समकित का समय पूरा हो जाने के बाद अनन्तानुबंधी के उदय से औपशमिक से गिर गया हो परन्तु जहाँ तक तलिय की सीमा तक न पहुँचा हो वहा तक बीच के समय में रहे हुए जीव को सास्वादन समकितवाला कहते हैं। औपशमिक समकित का अधिक से अधिक और कम से कम अंतर मुहूर्त का ही समय

दो पल्योपम से लकर नो पल्योपम तक के समय को पल्यो पम पृथक्त्व कहते हैं। इसके बाद संख्याता सागरोपम जितना समय व्यतीत होता है तब सर्वविरति परिणाम का आविर्भाव होता है इसके बाद संख्याता सागरोपम जितना समय चला जाय तब वहाँ उपशम श्रेणी उत्पन्न होती है। इसके बाद भी इतना ही समय व्यतीत होने के पश्चात मोक्ष प्राप्ति में प्रधान कारण रूप क्षपक श्रेणी के परिणाम का आविर्भाव होता है—इस तरह से जो आविर्भाव बताये हैं उसमें भी शास्त्रकार प्रायः शब्द बीच में लगाते हैं, क्योंकि मरुदेवा माता आदि का ऊपर बताये हुए समय को व्यतीत होने के बाद नहीं परन्तु तत्कालिक प्रादुर्भाव हुआ था इसलिए प्रायः शब्द बीच में लिया गया सो प्रमाण सहित है।

कर्म ग्रन्थ के अनुसार तो जिस भव में उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुआ हो उसी भव में क्षपक श्रेणी पर चढ़ने जैसा अनुपम परिणाम नहीं हो सकता—यद्यपि मतान्तर से तो हो भी जाता है जैसे भस्माच्छादित अग्नि की तरह मोहनीय कर्म का दबाते दबाते आगे बढ़ना उसी का नाम उपशम श्रेणी है भस्माच्छादित अग्नि ढकी हुई होने पर भी साधन सामग्री मिलते वढ़ती जाती है तदनुसार उदाहरण का घटित कर लेना चाहिए। इस तरह से घातिक कर्म रूपी अग्नि का शुद्ध ध्यान रूपी जल द्वारा शुभातिशुभ चढ़ते परिणाम से आगे बढ़ना उसका नाम क्षपक श्रेणी है।

ऊपर के कथन अनुसार समकित आत्मा में है उसकी पहचान किस प्रकार की जाय, क्योंकि वह तो आत्मा के परिणाम रूप है—

और परिणामिक भाव तो केवली–सर्वज्ञ के सिवाय कोई नहीं जान सकता तो फिर सामान्य आत्मा पहिचान किस तरह से कर सके ? फिर भी देशविरति वाले का आचार, विचार, वचन, आचरण से जाने–जा सकते हैं परन्तु एक अतीन्द्रिय परिणाम का जानना तो असाध्यात्मक है।

समकितरत्न का परिचय

जिस प्रकार धुएँ को देखने से अग्नि होने का अनुमान हो जाता है इसी तरह से (१) शम (२) संवेग (३) निर्वेद (४) अनुकम्पा, और (५) आस्तिकता इन पांच लक्षणों द्वारा समकितवन्त की पहिचान हो सकती है। जिस आत्मा में पांचों लक्षण विद्यमान हों—तो समकित होने का अनुमान हो सकता है—इसमें इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि जिसमें समकितका निवास होता है वहां समकित के लक्षण भी अवश्य होने चाहिए। परन्तु लक्षण हो वहां समकित होना ही चाहिए ऐसा नियम नहीं है बताया तो यूं है कि समकित हो वहां लक्षण होने चाहिए—उदाहरण है कि जिस जगह वनस्पति होती है तो वहां पर चतन्यशक्ति भी होना ही चाहिए परन्तु जहां चतन्य शक्ति हो वहां पर वनस्पति होना ही चाहिये ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि देव मनुष्य आदि में चतन्यशक्ति तो विद्यमान होती है परन्तु वनस्पति का होना कैसे माना जाय ? इसलिए यह सिद्ध होता है कि, जहां शम संवेगादि पांचों लक्षण हों वहां समकित होना ही

चाहिए, ऐसा नियम नहीं है परन्तु ज० समकित हो वहाँ पाचा लक्षण होते हैं।

प्रकृत म शम सवेग निर्वेद अनुकम्पा और आस्तिकता यह पाच चिह्न हो वहाँ समकित का सद्भाव तो अवश्य होता है, परन्तु समकित के सद्भाव म शम सवेग आदि पाचा लक्षण निरतर होने ही चाहिए ऐसा नियम नहीं है क्योंकि श्रेणिक महाराज, और कृष्ण वासुदेव आदि व्यक्तियो म समकित तो विद्यमान था परन्तु पांचा लक्षण भी साथ मे ही थ ऐसा निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते हां इतना अवश्य कह सकेंगे कि समकित की उत्पत्ति काल म इन पाचा लक्षण की विद्यमानता अवश्य होती है, बाद म पाचा लक्षण की विद्यमानता रहे या न रहे परन्तु समकित म किसी प्रकार से हानि नहीं हो सकती।

समकित के पाच लक्षण

समकित के पाच लक्षण प्रथम शम दूसरा सवेग तीसरा निर्वेद, चौथा अनुकम्पा और पांचवा आस्तिकता जिनको इस तरह से समझाया है कि शमअर्थात अनन्तानुबधी कषायकी परिणति जिस पुरुष की स्वाभाविक ही कम हो जाय—अथवा अनन्तानुबधी कषाय के उदय से विपाक—कषाय उदय कडवे फल का अनुभव करने से ऐसी परिणति पर घृणा उत्पन्न हो गई हो और ऐसी कषाय जन्य प्रवृत्ति से अलग रहता हो तो शम लक्षण का निवास समझना चाहिए।

कषाय का उदय एक ही साथ इस तरह से निर्मूल नहीं हो सकता—परन्तु कषाय भी इतनी सीमा तक न होना चाहिए कि जो समकित की उत्पत्ति के समय में अमर्यादित तृष्णा अमर्यादित विषय भोग की लालसा और परिणाम शून्य प्रवृत्ति की तरफ विशेष लक्ष्य हो जिस आत्मा में शम नाम के लक्षण का निवास हो उसमें अमर्यादित तृष्णा आदि नहीं हो सकती।

दूसरे भेद संवेग का भावार्थ ऐसा बताया है कि जिस मनुष्य में इस का निवास हो उस का संसार पर से विरक्तता—उदासीनता रहती है समय प्राय निमित्त मिलने पर विशेष वैराग्यभाव वाला बनता जाय और संसार को असार समझने लगे और भव समुद्र से पार पाने की वृत्ति वाला हो। ऐसे पुरुष को संवेगी कहना चाहिए।

समकित दृष्टि आत्मा दुर्गति के कारण भूल संसार रूपी कारागृह का दूर करने में अशक्त हो—सांसारिक व्यवहार में लिप्त रहे परन्तु लिप्त अवस्था में भी, संसार वृद्धि के कारण कार्यों में अलग रहता है जैसे—

समकित दृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अंतरग न्यारा रहे ज्यु धाय खेलावे बाल॥

इस तरह के भाववाली जो आत्मा हो उसी को संवेगवान् समझना चाहिए।

तीसरे भेद निर्वेद को इस तरह से समझाया है कि, जि आत्मा को मोक्षाभिलाषा हो संसार के तमाम सुखों को दु रूप मानता हो जितने भी पौद्गलिक सुख हैं वह सब दुःख कारण भूत हैं क्योंकि पौद्गलिक सुख का वियोग तो अवश्य होता है और जब इष्ट वस्तु का वियोग होता है अथ अनिष्ट का संयोग होता है तो इस तरह की प्राप्ति आत्मा को दुःख का अनुभव अवश्य होता है इस लिये सि होता है कि जिस में सुख माना गया है वह सुख सर्वथा न रह सकता।

राजा महाराजा चक्रवर्ती और देवता इन सब के सुख पौद्गलि होते हैं अर्थात् शुभ कर्म जन्य है ऐसे सुखोंको एकान्त सुखका साधन तरीके मानने की एकान्त आवश्यकता नहीं है। निश्चय पूर्वक समझना चाहिए कि संसार के सुखों में से भी सुख ऐसा नहीं है कि जो अन्त में नीरस न हो। मोक्ष के सामने तो सब तरह के सुख नि सार है। इस तरह के सु की प्राप्ति पर विश्वास रखकर उसी भोग विलास की तु पर आधार रखकर बैठा रहना तो भ्रान्ति के समान है, इ लिये मोक्षके अभिलाषी जन इस तरह के नि रस सुखों तुष्ट नहीं होते, और ऐहिक सुखों को तुच्छ समझकर मो सुख की अभिलाषा में तत्पर रहते हैं।

चौथा भेद अनुकम्पा है, जिसका भावार्थ यह होता है कि दीन दुःखी भय पाये हुए जीव को दुःखी अवस्था में देख

दुःखभावस उनके ऊपर करुणाभाव रखना, और जहाँ तक हो सके उनकी आपत्तियां दूर करनेके लिये यथोचित प्रयत्न करना और सहायता पहुंचाना—उनके कष्टों के प्रति दया, अनुकम्पा करके निजके हृदय में दुखित होना, इस तरह की प्रकृति हो उसमें चौथे लक्षण का निवास समझना चाहिए।

पांचवां मत आस्तिकता है वीतराग भगवन्त प्ररूपित पदार्थों को सत्यरूप से जानना—मानना और भगवान के कथन पर दृढ़ता से विश्वास-श्रद्धा रखनी चाहिए क्योंकि वीतराग भगवन्त के वचन—भगवान का कथन अयथावाती नहीं होता-अयथावाद जिस जगह आता है वहां राग द्वेष की अस्तित्वता होती है और वीतराग भगवंत में राग द्वेष सर्वथा नहीं होता इसी कारण उनके वचन-कथन सत्य प्रामाणिक और विश्वास रखने योग्य होते हैं अतः ऐसे तीर्थंकर भगवान के वचन पर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास रखना उसी का नाम आस्तिकता है।

ऊपर बताये हुए पांचों लक्षण द्वारा समकित की पहिचान होती है इस तरह के पांच लक्षण जिस पुरुष में विद्यमान होते हैं वहां समकित तो होता ही है, परन्तु जिसमें समकित हो वहां इन पांचों लक्षणों का होना आवश्यकीय नहीं है। हां ! यह निश्चयरूप से है कि जहां पांचों लक्षण हों वहां समकित अवश्य होगा।

समकित के प्रतिबंध का विचार

समकित प्राप्ति में प्रतिबंध—अर्थात् समकित प्राप्ति को

रोकने का मुख्य कारण ज्ञानावरणीय कर्म अथवा अनंतानुबंधी कर्म को मुख्य माना गया है।

विचारवान पुरुष को पहिले तो यह जान लेना चाहिए कि समकित का स्वरूप किस तरह का है? जिसका निर्णय करने में इतना ही समझ लेना बस होगा कि ज्ञान में रुचि—जो सम्यक् प्रधान है, उसीको सम्यक्दर्शन—समकित कहते हैं क्योंकि बिना ज्ञान के सम्यक्ज्ञान किसी को भी प्राप्त नहीं होगा। हाँ—एक बात जरूर है कि शास्त्रों में किसी जगह ऐसा कथन आता है कि दर्शनमोह—अर्थात् समकित मोहनीय भी समकित प्राप्ति में बाधारक होता है और इस तरह के कथन की महत्वता भी है परन्तु इसका कारण यह है कि व्यवहार में यह बात प्रसिद्ध होने से शास्त्रों में भी इस तरह का उल्लेख मिलता है परन्तु वास्तविक विचार किया जाय तो सिद्ध होता है कि जिस तरह केवल ज्ञान की उत्पत्ति में मोहनीय कर्म अन्तराय भूत होता है—ऐसा कथन अवश्य मिलता है परन्तु ऐसा कथन नहीं मिलता कि मोहनीय कर्म केवलज्ञान का बाधारक है। तो भी इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि जहाँ तक मोहनीय कर्म का क्षय न हुआ तो वहाँ तक केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता और इस न्याय से केवलज्ञान की उत्पत्ति में मोहनीय कर्म का क्षय होना निमित्त रूप से कारण माना गया है। परन्तु मोहनीय कर्म केवलज्ञान का बाधारक बन जाय ऐसा कथन में तो कहीं है और न मानने योग्य है, तथापि इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि केवल ज्ञान की उत्पत्ति में केवलज्ञानावरण अवश्य समझना चाहिए और अनन्तानुबंधी

"कल्पभाष्य" नाम के ग्रन्थ में मिल सकता, और कर्मग्रन्थ में मिथ्यात्व मोहनीय के उपशम क्षयोपशम और क्षय से उत्पन्न होने वाले सम्यक्त्व का अनुक्रम से औपशमिक क्षायोपशमिक और क्षायिक नाम से बताया है इसलिये मिथ्यात्व मोहनीय आदि को प्रतिबन्धक माना गया है।

भव्य अभव्य का विचार

जिस आत्मा में मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता हो उसे भव्य कहते हैं और जिस आत्मा में मोक्ष प्राप्ति की योग्यता का अभाव हो उसको अभव्य कहते हैं।

प्रश्न—दोनों तरह की आत्मा में चैतन्य शक्ति एकसी होती है फिर एक को भव्यात्मा और दूसरे को अभव्यात्मा कहने का क्या कारण है ?

उत्तर—गाय भैंस घोड़ा ऊंट आदि तिर्यचों में मनुष्यों में देवताओं में और नारकी के जीवों में चैतन्यता तो एकसी बताई गई है, तथापि भिन्नता तो देखने में आती है, इस तरह से चेतनता समान स्वरूप होने पर भी भव्य अभव्य का मानना युक्ति सहित है।

प्रश्न—नरक, तिर्यञ्च मनुष्य और देवगति की भिन्नता तो कर्मोपार्जित अनुसार है—यदि कर्मोपार्जन की भिन्नता से हो

भव्य अभव्य का होना माना जाय तो यह तो कर्मोपार्जन के प्रभाव से हुआ न कि आत्मा की जाति से और यदि ऐसा मानें तो शास्त्र के कथन से विरुद्ध है क्योंकि शास्त्रकार तो भव्यता और अभव्यता को कर्म जन्य नहीं मानते और कहा है कि यह तो स्वाभाविक ही होते हैं तो फिर प्रश्न का स्थान है कि नहीं ?

उत्तर—जिस तरह जीव में जीव और आकाश आदि अजीव में द्रव्यता सत्त्वता ज्ञेयता आदि धर्म एक सा होते हैं तथापि जीवमें चेतन्य शक्ति आकाश आदि में अचेतन्यता आदि विशेष धर्म स्वाभाविक होने से स्वभाव भेद की अपेक्षा भिन्नता मानी जाती है इसी तरह स्वभाव भेद के कारण भवी अभवी, में भिन्नता मानना सकारण है।

प्रश्न—जब कि भवी, अभवी का भेद स्वभाव जन्य सिद्ध होता है और आत्मा की चेतन्य शक्ति स्वाभाविक होने से उसका नाश नहीं होता इसी तरह से भव्यता भी स्वाभाविक है तो इसका भी नाश नहीं होना चाहिये—और नहीं होता है। तो फिर मोक्ष प्राप्ति किस तरह हो सकेगी ? क्या कि सिद्ध के जीव तो न भव्य हैं न अभव्य हैं, और भव्यता तो स्वाभाविक मानी गई है तो अनादित्व कि जब तक भव्यताका नाश न हो जाय तब तक मोक्ष प्राप्ति किस तरह हो सकता है क्योंकि भव्यता स्वाभाविक ही है तो फिर चैतन्य शक्ति से

रहगी, और जबकि इसका नाश ही नहीं होता है तो धर्म क्रिया-यागादिका सवन आदि धर्म साधन करना व्यर्थ है।

उत्तर—प्रश्न तो युक्ति सगत है इस का स्पष्टिकरण इस तरह से है कि—जसे घटका प्रागभाव अनादिकाल से स्वाभाविक है तथापि घटकी उत्पत्ति दशा म उसका अभाव माना गया है। इसी तरह स भव्यता स्वाभाविक है परन्तु मोक्षावस्था में तो इसका अभाव मानने म किसी तरह का आपत्ति नहीं है और कारण भी इसका स्पष्ट ह कि जिसम जिस प्रकार की योग्यता होती ह उसी म वह काम आती है और बाद म उसकी आवश्यकता नहीं रहती। जिस तरह मिट्टी म घट बनाने का योग्यता है परन्तु घट बन जान के बाद नहीं रहती, इस तरह से समझ लो कि यागादि क्रियायें व्यर्थ नहीं होती।

प्रश्न—जिस तरह भव्यताका अभाव मो ावस्था म माना गया है तो इसी तरह से अभव्यता का भी मानना चाहिए।

उत्तर—जिस प्रकार मिट्टी में घट बनने का योग्यता होती है और तदनुभाव घट म भी उत्पन्न होने क बाद योग्यता नहीं रहती, इसी तरह मुक्ति गमन योग्यता रूप भवीपन—जब कि मुक्ति प्राप्त हो जाती है तब भव्यता नहीं रहती, और अभव्यता कब नष्ट होती है कि जब मोक्षप्राप्ति की योग्यता आ जाय— परन्तु इस तरह होना तो व पुण्यवन है तो फिर इसका अभाव इस प्रकार हो सकता है।

समय म एक एक जीव मोक्ष म जाय तो भी जीव राशि का अनन्तता विशेष प्रमाण से होने के कारण अभाव नहीं हो सकेगा।

तात्पर्य-भविष्यत काल आगम के बताए हुए उदाहरण के अनुसार भवी जाव भी अनन्तानन्त है और मोक्ष में भी इस जीवराशि का अनन्तवां भाग ही जायगा, इस न्याय से अनागत काल का कभी उच्छेद नहीं होगा तदनुसार भवी जीव राशि का भी अभाव कभी नहीं होगा।

भवी जीव के लक्षण ही इस प्रकार के होते हैं कि जो मोक्ष म जाने वाले हैं—परन्तु जितने भवी जीव हैं वह सब के सब ही मोक्ष म चले जांय ऐसा नियम नहीं है क्योंकि योग्यता मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं होती, परन्तु सब तरह की साधन सामग्री मिलने पर कार्य की सिद्धि होती है। जिस प्रकार सब तरह के पाषाण म या सब धातुम मूर्ति बनने की योग्यता है, तथापि योग्यता होते हुए भी सब पाषाण की अथवा सब धातु ही मूर्तियां ही बनेंगी ऐसा नियम नहीं है। परन्तु जिस पाषाण या धातु म या मिट्टी में मूर्तियां घट बनने की सब तरह की सामग्री विद्यमान हो तब मूर्तियां या घट बन सकेगा जिनमें तथा प्रकार की सामग्री विद्यमान नहीं है तो मूर्तियां या घट नहीं बना सकेंगे। इस तरह के उदाहरण से हो स्पष्ट हो जाता है कि जिस भवी जीव को मुक्ति लायक सामग्री प्राप्त हुई है वही आत्मा मोक्ष में जा सकती है। इस तरह के प्रश्नोत्तर से यह सिद्ध होता है कि जिस जीव म मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता हो उसी को भवी जीव

समकित रत्न

भगवन्त परमात्मा ने संसारी आत्माओं के लिये मोक्ष प्राप्ति के हेतु अनेक मार्ग बताये क्रियाएँ बताई विधान बताए और समझाया कि इस विषय में प्रवेश करते हुए बहुत सा संग्रह कर लोगे किन्तु समकित की प्राप्ति किये बगैर मोक्ष सुख तक नहीं पहुँच सकते। समकित तो बीज रूप है। आत्मा यदि संयम लेकर मुनि मार्ग में प्रवेश किया हो चार कषाय का त्याग किया हो, सावद्य योग से पीछे हट गये हो और आराध विधान प्रतिमात्रा में किया हो तो समकित की क्या आवश्यकता है ? इस विषय को स्पष्ट करते कहा है कि —

विरया सावज्जाओ, कसाय हीणा महव्वय धरावि ।
समदिट्ठि विहुणा, कयावि मुक्खन पावंति ॥१॥

भावार्थ —सावद्य आरम्भ से निवृत्ति पाये हो क्रोध मान माया लोभ इन चारों कषाय का त्याग करके शुद्धता पूर्वक पाँच महाव्रत का पालन किया हो परन्तु समकित रहित हों तो मोक्ष सुख नहीं पा सकते ।

जीवन में चरित्र को शुद्ध बनाने के लिये महाव्रत का पालन कषाय का त्याग सावद्य योग से निवृत्त जैसा कठिन मार्ग से भी समकित का मंदिर बनाकर समझाया है कि समकित विशुद्धि

बिना मोक्ष नहीं पा सकते यह विषय ध्यान पूर्वक समझने हेतु श्री महामहोपाध्यायजी महाराज कह गये हैं कि सकल क्रियानु मूलं श्रद्धा माग आके सोचा यह कथन भी पूर्वाचार्यों के कथनानुसार है। समस्त क्रिया का मूल समकित बताकर उपाध्यायजी महाराज ने कहा कि सच्चा माग समकित प्राप्ति से ही पा सकते हैं। प्रत्येक क्रिया में समकित शुद्धि की आवश्यकता है। समकित के बिना की क्रिया पुण्य होती है समकित बिना किये हुए आराधन तपस्या सहित शुभ व दिव्य सुख दे सकते हैं। पुण्य या संचय भी हो सुख भोगने के साधन भी हों परन्तु कर्म निर्मूल कर मोक्ष प्राप्ति के लिये तो समकित शुद्धि की आवश्यकता होती ही है बिना समकित के आत्मज्ञान व आत्म दर्शन नहीं हो सकता। इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि —

नय भग प्रमाण हो, जो अप्पा सायवाय भावेण।
जाणइ मोक्ख मरुग्ग सम्मदिट्ठिया सोऽग्गा॥

भावार्थ —कोई महानुभाव नयभग प्रमाण से आत्मज्ञान पा सके और स्याद्वाद पक्ष से आत्म स्वरूप देख सके और आठ प्रकार से स्याद्वाद द्वारा मोक्ष स्वरूप अर्थात् निकर्मावस्था के स्वरूप को समझे बगैर वस्तु को हेय समझे जीव गुण को उपादेय समझे अर्थात् इस प्रकार की धारणा शुद्ध मान हो तो समकित की प्राप्ति समझनी चाहिये उपरोक्त विधान तथा प्रमाण के अनुसार क्रिया करने में आवे और विशेष ज्ञान से क्रिया उत्तम

क्रिया के फल म समकित प्राप्ति का नियाणा करे या दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र म वर्णित नव प्रकार से नियाणा करे तो समकित का नाश होता है। इस प्रकार से प्राप्ति के लिय बिगन बताकर कहा है कि फल मिल नाम इसकी चिंता न किया करो परन्तु प्राप्त करने म वीर्यवान होकर क्रिया करते रहो तो स्वत प्राप्त होती है। इतनी सुगमता पाकर भी क्रिया का फल प्राप्त करने के लिय भिखारियों की तरह आत्मा को नोची दशा में न डालो। वीर्यवान पुरुष मागकर या रोकर लेते नही है। मागने से वस्तु मिलती नहीं वस्तु तो महद प्रयत्न निज भुजबल से प्राप्त होती है और वीर्योल्लास स प्राप्त द्वारा हो तो उनका समकित फलता है।

समकित प्राप्ति के लिय मानव भव है-तिर्यञ्च भव मे किसी समय समकित पा जाय तो अपवाद रूप मानते हैं। जसे बलदेव मुनिराज का भक्त एक मृग होगया था। जिसकी कथा शास्त्रो में है परन्तु ओगा कारण नहा। निमित कारण है। मुनिराज निमित्त कारण थे इसलिये पांचवें गुण स्थान तक मगात्मा आ सकती है।

मानवी को समकित प्राप्ति के लिय विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती केवल विश्वास से आत्मा को समकित की तरफ लक्ष रखने मात्र स सयोग अच्छे मिल तो प्राप्ति होती है। महाराजा श्रेणिक समकित प्राप्ति के लिय अनाथी मुनि का उपदेश सुनकर भाव सहित श्रवण कर दृढ विश्वास करके सहज

म ही समकित पायगे। मानवी म। कई बार ऐसे प्रसग आते हैं समकित पाने के लिय प्रयत्न का समय भी मिलता है परन्तु दृढ़ता न होने से स्थानान्तर हो जाते हैं गिरजाते हैं पतित हो जाते हैं, घोडे ऊपर चढ़ी, ढील तग स क्यो हो ता सवार को गिरत दर नहीं लगती। बच्चे पाय शिलान्यास किया होतो गिरते क्या देर लग ? किसी भी प्रसग म अनिवाय सयोग मे गिरने क्या देर लगे ? गृहस्थ के अनेक कार्यों मे बहुत से कारण मिलते हैं लोग ससार म धम की उत्तमता और आवश्यकता को भूल जाता है अर्थात सकट के समय मानवी को पतित कर देता है। जब कभी विषम सयोग, कठिन समस्या उपस्थित होता श्रद्धावान भी पतित होकर सहज म ही पाय हुए रत्न को खो देता है। समकित के पाच प्रकार बताये हैं।

खईऊ उसमोव समीय वयग मुगमामीय च सासाणा
पचवीहु समत्त पन्नवाय जिणवर दहि ॥१॥

भावाथ —समकित पाँच प्रकार का होता है प्रथम उपशम समकित जिसकी स्थिति अन्तमुहूत की होती है। इस प्रकार का समकित आता है और चला जाता है। परिणाम की धारा शुद्ध मान होता जाय और तत्काल बिगड़ती भी जाय ऐसी अस्थिरता के कारण यह समकित टिक नहीं सकता दूसरा सास्वादन समकित जिसकी स्थिति छ आवलिका काल की होती है प्राप्त होनेपर छ आवलि का काल तक टिक सकती है। परतु समय ^ । मिलने म श्रद्धा से गिरजाय

आजाता है। तारे म म 'वेदक' समकित की धम काय करते हुए आव धार आता है परन्तु भत म स्थिति जमा या वैसी रह जाती है। जसे कि प्रत्येक पप में भावविना के समत सामग्री कितना लाभ पहुचाते हैं? स्वभाव के कारण प्राप्त की हुई वस्तु खाजाने पर दशा खराब हो जाती है तदनुसार वेदक समकित किसी को उत्पन्न हो और धम साधन करता हुवे भावना की श्रेणी चढ़ती रहे तो लाभ पाता है और अस्थिरता में रहे तो प्राप्त किया हुआ समकित नष्ट हो जाता है। 'क्षायिक' समकित की तैंतीस सागरोपम से कुछ अधिक रहता है। इसे दोनों प्रकार का समकित आय बाद जाता नहीं है। इनका तात्विक स्वरूप समकित प्राप्ति के लिये जानना आवश्यक है। समकित के सडसठ भेद बताये गये हैं —

चउ सद्दहणा तिलिंग, दस विणय तिसुद्धि पंचगयदोसम।
अट्ठपभावण भूसण, लक्खण पचविह सजुत्त ॥१॥
छव्विह जयणागार, छ भावण भाविय च छट्ठाण।
इय सत्त सट्ठि दसण भय विसुद्ध च समत्त ॥१॥

भावार्थ —चार सद्दहणा तीन लिंग दशविनय तीन शुद्धि पांच दूषण आठ प्रभावक पांच भूषण पांच लक्षण छ जयणा और छ आगार इस तरह स सडसठ भेद के स्वरूप को जिनागमानुवृत्ति से सीखलेना चाहिये। भगवन्त परमात्मा ने कहा है कि —

दसण भट्ठो भट्ठो दसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाण।
सिज्झन्ति चरणरहिया, दसण रहिया न सिज्झन्ति ॥१॥

भावार्थ—सम्यग् ज्ञान श्रद्धा—श्रद्धारूपी समकित से जो भ्रष्ट होगये हों तो वह आत्मा मोक्ष पद नहीं पा सकता यह जान लेना चाहिये कि चारित्र रहित तो किसी समय सिद्ध पा सकता है परन्तु समकित रहित का तो सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकता।

समकित प्राप्त करने की इच्छा तो प्रत्येक आत्मा को होती है। परन्तु प्राप्त करने की बना सामग्री अभ्यास और शुभाशुभ समझने की शक्ति बहुत कम होती है। नियमानुसार यथा प्रवृति करण आदि प्रकार करने से समकित प्राप्त होता हो तो अंगीकार करने की क्रिया आत्मा के उत्पन्न भ्रमण यह असम्भवित है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि समकित प्राप्ति के दो कारण होते हैं एक तो निसर्ग दूसरा 'अधिगम्' दोनों में से निसर्ग से जो प्राप्त हो उस नसर्गिक समकित कहते हैं और अधिगम् से प्राप्त हो उसे अधिगमिक समकित कहते हैं। निसर्ग अर्थात् स्वाभाविक अभ्यास और भवितव्यता के परिपक्व योग से तीन करण पूर्वक पुरुष को स्वाभाविक श्रद्धा उत्पन्न हो तो धर्म परायण होने से नसर्गिक समकित होता है। यहां पर मरुदेवा महाराज आदि के उदाहरण समझने योग्य हैं।

दूसरे भेद से अधिगम् गुरु महाराज के उपदेश से या निमित्त मिलने से धर्म करणी करने २ शास्त्र श्रवण के कारण से उत्पन्न हो उसे अधिगमिक समकित कहते हैं। विशेष समझाया

जीवाजी नव पदार्थ ।
जा जाणयो तस्स होईसमत्त ।।

जीव अजीव आस्रव संवर, निर्जरा बंध और मोक्ष इन नव तत्वों का जो भगवंत परमात्मा द्वारा प्रणीत है यथार्थ स्वरूप सम्यग्ज्ञान होने पर ही जान सकते है । समझना चाहिए कि ज्ञान प्राप्ति मात्र से ही नहीं किन्तु सम्यग्ज्ञान हो तो हो उनका पदार्थ का स्वरूप यथार्थ रूप से जाना जा सकता है । मनुष्य समकित प्राप्त करने का जिज्ञासु होता है परन्तु प्राप्त करने में प्रयत्न कितना करता है ? समकित सहज में ही मिल जाय उस हेतु पानपूजा पढ़ाना आमत्रेण पूजा का वास क्षेप करना, डलवाना और समकित पालन की श्रद्धा रखना ये लक्षण समकित प्राप्त करने के नहीं हैं । हमारा इस किया का निषेध करने का उद्देश्य नहीं है किन्तु समझना तो आवश्यक है । समकित प्राप्ति के लिये श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज ने बहुत सुन्दर कहा है कि—

समकित नवि लह्युरे, तात रुल्यो चतुर गति माय ।
झूठबोलवा नो व्रत लीनो, चोरी नू पण त्यागी ।।
व्यवहारादि निपुण भयोपण अंतर दृष्टि न जागी ।।

भावार्थ —पाच महाव्रत या पांच अणुव्रत लिये, मिथ्या बोलने का व चोरी करने का भी त्याग किया हो व्यवहार दशा में प्रवीण हो गये हो, व्यवसाय चलाने में चतुराई प्राप्त की हो व्रत नियम भी पालते हो परन्तु सम्यग् पूर्वक (श्रद्धा) नहीं है तो

हुव कष्ट पहुचने पर प्रसन्न होता हो परन्तु ऐसी सब क्रिया
यदि समकित रहित हैं तो सब निरर्थक समझनी चाहिये। समकि
सहित क्रिया हो तो लाभदायी होती हैं।

> कनीतिकैवनत्रस्य कुसुमस्येव सौरभ ।
> सम्यक्त्व मुच्चतेसार, सर्वेपाधम्मे कम्मंण ॥
>
> ' आध्यात्मसार

भावार्थ —जिस प्रकार आख म कीकी (पुतली) सारभू
होती है पुष्प म सुगन्ध सारभूत होती है तदनुसार समस्
धर्मक्रियाओ मे समकित' सारभूत होती है।

लेखक
चदनमल नागोरी

उय नहीं हो पाता। सातवां नियाणा किया जाय तो दश विर पान का उदय नहीं होता। आठवा नियाणा करने से सर्व विर संयम लेना उदय में नहीं आता, और नौवां नियाणा करने वो मोक्ष नहीं पा सकता। इसलिए समकितवन्त आत्मा नियाणा न करता। पडिमाधारी के लिये पडिमा अधिकार में वर्णन है कि स किन दर्शन प्रतिमा एक महिने पर्यन्त पालन करते हुए राजाभि दो राज्याभियोग से आगार रहित केवल शुद्ध समकित का धारण करने से प्रथम पडिमा होती है अतः उपरोक्त कथन से समकि प्राप्त्यर्थ भी नियाणा करना निषेध है जिसका वर्णन धर्मरत्न प्रकरण ग्रंथ दूसरे भाग में पृष्ठ ५८ पर है कि—

जह चिंतामणि रयण सुलहं नहु होइ तुच्छ विहवाण ॥
गुण विहव वज्जियाण जियाण तह धम्मरयणंपि ॥१॥

भावार्थ —जिस प्रकार धन रहित मनुष्य को चिन्तामणी रत्न की प्राप्ति सुलभ नहीं, होती तदनुसार गुणरूप धन रहित आत्मा को धर्म रत्न की प्राप्ति नहीं होती। पुण्य रहित आत्मा अथवा अल्प पुण्य वाले को भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये इच्छुक आत्मा को पुण्योपार्जन के हेतु मार्गानुसारी के गुणग्रहण करने के अतिरिक्त श्रावक के गुणग्रहण भी करना उचित है ऐसा कथन महावीर चरित्र पृष्ठ ४७७ पर है।

जैन दर्शन में आत्म विशुद्धि के लिए ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना बताई है। ज्ञान से प्रत्येक वस्तु के गुण अवगुण की जानकारी होती है। ज्ञान का विकास होता है और विकास होने से आत्म स्वरूप ईश्वर भक्ति, ध्यान की ओर लक्ष्य जाता है, जिससे ज्ञान विकास बढ़ने से केवल ज्ञान पा सकते हैं।

संघ सेवक
चन्दनमल नागौरी
छोटा सादडी (मेवाड)